अनसुना मत करो इस कहानी को

(परम्परागत जल प्रबन्धन)

अनिल यादव

हमारी बहुत सारी छोटी-मोटी समस्याओं के न सुलझने या धीरे-धीरे विकट रूप कि हमने अपने आपको भौतिक ही नहीं, मानसिक स्तर पर भी राजसात हो जाने दिया है।

इस पुस्तक को पढ़ने के बाद हम कुछ हद तक यह समझ सकते हैं कि सामूहिक हत्या क्या होती है और वह किस प्रकार की जाती है।

यद्यपि अब इस पुस्तक का शीर्षक बदल चुका है परंतु इसके पुराने शीर्षक में थोड़ा सा परिवर्तन करके मैं पूछना चाहूँगा-

"कहाँ गुम होते जा रहे हैं- हम ?"

अनिल यादव ने निस्संदेह इस पुस्तक के लिये अनुपम मिश्र की 'आज भी खरे हैं तालाब' से प्रेरणा ली है। परंतु शायद मात्र प्रेरणा से यह काम जो उन्होंने किया है, न हुआ होता अगर उनकी लगन और इस समस्या के प्रति उनकी चिंता एक जुनून न बन गई होती। बहुत परिश्रम पूर्वक उन्होंने विदिशा जिले के तालाबों के बारे में तथ्यात्मक जानकारी देने वाले आंकड़े इकट्ठे किये हैं और न केवल उनके जन्म से लेकर उनकी मृत्यु अथवा आसन्न मृत्यु तक का इतिहास खोजा और लिखा है, बल्कि, इन तालाबों के बारे में प्रचलित बहुत सारी मनोरंजक और सोचने पर मजबूर कर देने वाली अनुश्रुतियों को भी हमारे लिये ढूँढ कर प्रस्तुत किया है। जिस आंचलिक भाषा का या कहिये कि 'बोली' का उपयोग उन्होंने किया है उसने उनके वर्णन को बहुत ही जीवन्त बना दिया है। यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने किया है, जिसके लिये 'बधाई' एक बहुत अपर्याप्त शब्द है।

1 जुलाई 1997

हरिवंश सिलाकारी
संचालक
सम्राट अशोक अभियांत्रिकीय संस्थान
विदिशा

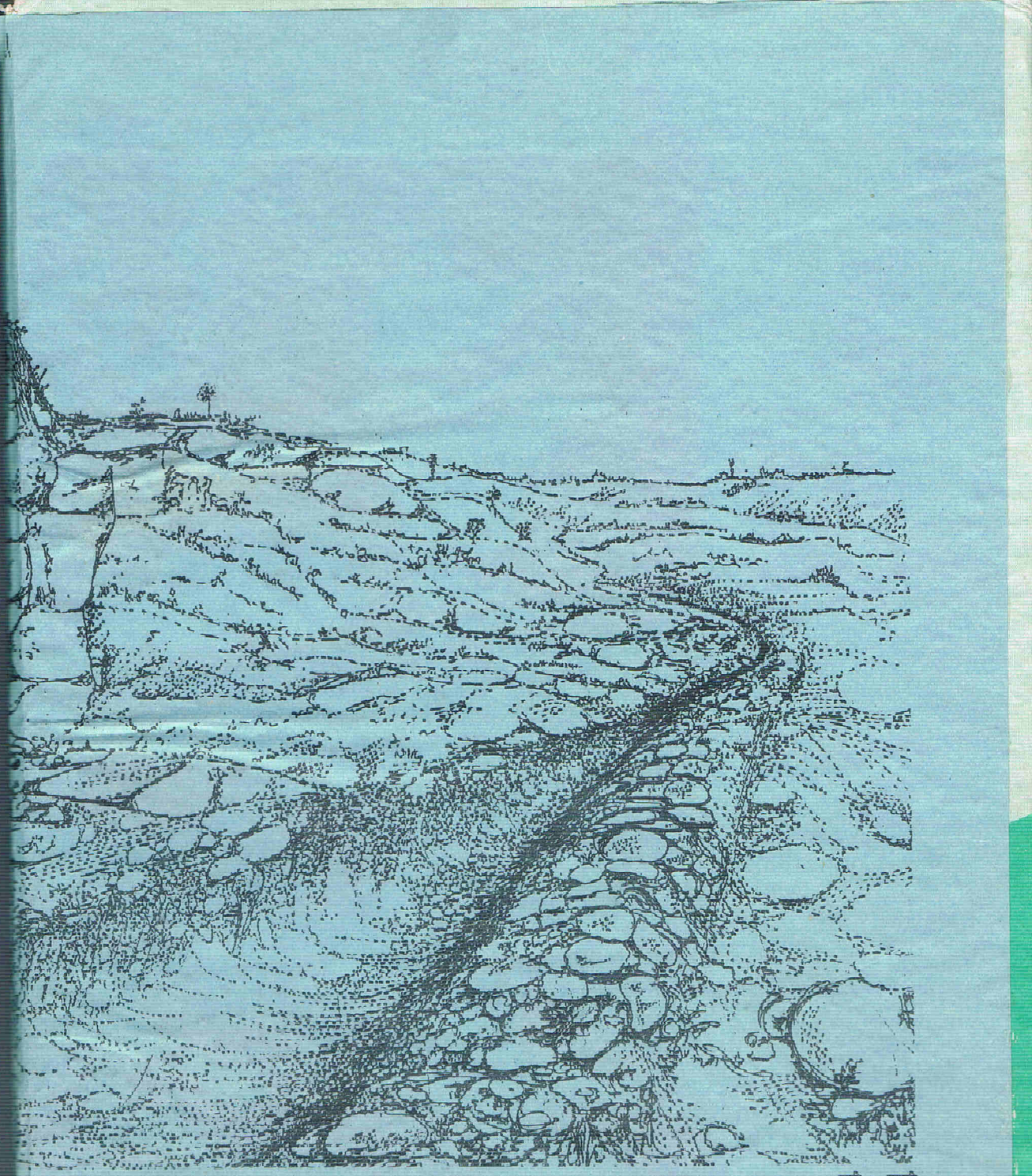

परखी - पठारी

रामकृष्ण प्रकाशन
सावित्री सदन, तिलक चौक
बिदिशा (म. प्र.) 464 001

रामकृष्ण प्रकाशन
सावित्री सदन, तिलक चौक
विदिशा (म. प्र.) 464 001

जैसलमेर से सीखें

"जैसलमेर, देश का सबसे सूखा इलाका। गजेटियर में जैसलमेर का वर्णन बहुत डरावना है। यहाँ एक भी बारहमासी नदी नहीं है। भूजल 125 से 250 फीट और कहीं–कहीं तो 400 फीट नीचे है। वर्षा अविश्वसनीय रूप से कम है। सिर्फ 16.4 से.मी.। पिछले 70 वर्षों के अध्ययन के अनुसार वर्ष के 365 दिनों में से 355 दिन सूखे गिने गये हैं। यानि 120 दिन की वर्षा ऋतु यहाँ अपने संक्षिप्ततम रूप में केवल दस दिन के लिये आती है।

जैसलमेर जिले में आज 515 गाँव है। इनमें से 53 गाँव किसी न किसी वजह से उजड़ चुके हैं। आबाद हैं 462। इनमें से सिर्फ एक गाँव को छोड़ हर गाँव में पीने के पानी का प्रबन्ध है। उजड़ चुके गाँवों तक में यह प्रबन्ध कायम मिलता है। सरकार के आँकड़ों में जैसलमेर के 99.78 प्रतिशत गाँवों में तालाब, कुएँ और अन्य स्रोत हैं।

एक बार फिर दुहरा लें कि मरुभूमि के सबसे विकट माने गये इस क्षेत्र में 99.78 प्रतिशत गाँवों में पानी का प्रबन्ध है और अपने दम पर है। इसी के साथ उन सुविधाओं को देखें जिन्हें जुटाना नये समाज की नई संस्थाओं, मुख्यतः सरकार, की जिम्मेदारी मानी जाती है। पक्की सड़कों से अभी तक केवल 19 प्रतिशत गाँव जुड़ पाये हैं, डाक आदि की सुविधा 30 प्रतिशत तक फैल पाई है। चिकित्सा आदि की देख–रेख 9 प्रतिशत तक पहुँच सकी है। बिजली 1.73 प्रतिशत गाँवों में ही है। शिक्षा सुविधा इन सबकी तुलना में थोड़ी बेहतर है, 50 प्रतिशत गाँवों में। फिर से पानी पर आयें– 515 गाँवों में 675 कुएँ और तालाब है। इसमें तालाबों की संख्या 294 है। ऐसी बात नहीं है कि मरुभूमि में पानी का कष्ट नहीं रहा है। लेकिन यहाँ समाज ने उस कष्ट का रोना नहीं रोया। उन्होंने एक तरफ पानी की हर बूंद का संग्रह किया दूसरी तरफ उसका उपयोग खूब किफायत और समझदारी से किया।"

-श्री अनुपम मिश्र की पुस्तक 'आज भी खरे हैं तालाब' से साभार।

यह उदाहरण हमारे जिले के गाँवों के लिये एक सबक भी है और प्रेरणा भी। विदिशा में जहाँ औसतन 1098 मि.मी. पानी बरसता है और बह कर निकल जाता है, गर्मियों में हम फिर पानी के लिये अफसरों की चिरौरी करते फिरते हैं।

.....जब हमारे लोग उन तालाबों को देखते हैं उन्हें विस्मय होता है। वैसे तालाबों का निर्माण तो दूर वे उनका भली-भाँति वर्णन भी नहीं कर सकते।

अलबरूनी (विदेशी यात्री)

किताब–उल–हिन्द

ग्यारहवीं सदी

जल प्रबन्धन का पुराना नजरिया

सन् 1929 से पहले कावेरी नदी के ऊपर जो नया बाँध बनाया गया है उसकी खुदाई में टीपू सुल्तान के समय का फारसी अक्षरों में खुदा एक शिलालेख मिला। 1797 ई. में टीपू सुल्तान ने इसी जगह बाँध की बुनियाद रखते समय यह शिलालेख लगवाया था। यह शिलालेख हमारे पुराने जल प्रबन्धन की एक झलक दिखाता है।

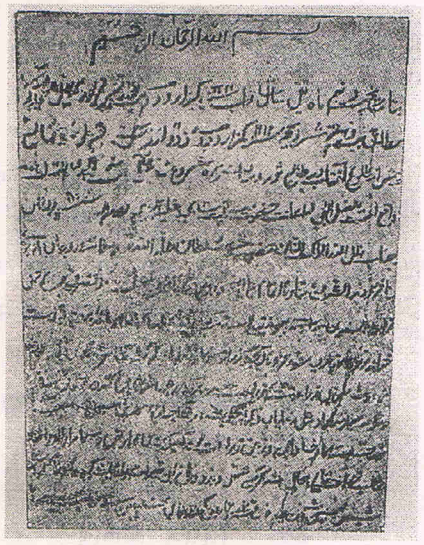

कृष्ण राजा सागर की आधारशिला पर टीपू सुलतान के फ़ारसी शिलालेख का चित्र

"इस बांध की तैयारी में जो लखूखा रुपये सरकार खुदादाद ने खर्च किए, वे अल्लाह की राह में खर्च किए गये हैं। सिवाय इस समय की पुरानी या नई खेती-बाड़ी के, जो कोई मनुष्य परती ज़मीन में (इस नए जलाशय के जल की सहायता से) खेती-बाड़ी करेगा, अपनी ज़मीन के फलों या नाज की पैदावार का जो भाग आम तौर पर नियम के अनुसार दूसरी प्रजा सरकार को देती है, उस भाग का वह केवल तीन-चौथाई खुदादाद सरकार को दे और बाक़ी एक-चौथाई अल्लाह की राह में माफ़ है और जो कोई मनुष्य नई ज़मीन में खेती-बाड़ी करेगा, उसकी औलाद और उसके वारिसों के पास वह ज़मीन पीढ़ी दर पीढ़ी उस समय तक कायम व बहाल रहेगी, जिस समय तक कि ज़मीन और आसमान क़ायम है। अगर कोई शख्स इसमें रुकावट डाले या इस अनन्त ख़ैरात में बाधक हो, तो वह कमीना, शैतान-ए-मलऊन के समान, मनुष्य जाति का दुश्मन और किसानों की नसल का, बल्कि समस्त प्राणियों की नसल का दुश्मन समझा जाएगा।"

लिखा सय्यद जाफ़र

श्री सुन्दर लाल की पुस्तक "भारत में अंग्रेजी राज" (प्रथम खण्ड) से साभार। यह पुस्तक अंग्रेजों द्वारा जब्त कर ली गई थी।

मच्छी–मच्छी, कित्ता पानी

□

15. तालाब तो कई थे पर.....
23. पूरा कुनबा बलिदान किया था
तब भरा था बड़ोह का तालाब
26. चुल्लू भर पानी ही बचता है,
पठारी तालाब में
30. बन्जारों ने बनाया था इसे
34. नहीं रख पाये मान, मानसरोवर का
सो अब प्यासे हैं
38. सिरोंज तालाब-
कभी स्टेडियम तो कभी हैलीपैड
45. अब तो बस यादों में ही बचे हैं
उदयपुर के तालाब
48. चन्द दिनों की ही ज़िन्दगी बाकी है
51. पानी तो है पर कब तक
54. हैदरगढ़ -भूला हुआ सबक
58. अटारी खेजड़ा का रास्ता
65. कहाँ गुम होते जा रहे हैं ये तालाब ?
77. सन्दर्भ, स्रोत, सहयोग
96. आभार

□□

अनसुना मत करो
इस कहानी को

फूट गये पाल
सूख गये ताल

अब कहाँ सिंघाड़ी, और कहाँ मछली। त्योंदा तालाब।

तालाब तो कई थे पर.....

बम्बई से दिल्ली जाते समय विदिशा से एक कि.मी. आगे निकल कर सागर पुलिया पर रेल यात्रियों को हर साल बरसात में दूर तलक जो पानी की झिलमिलाती चादर नज़र आती थी, 1995 में नज़र नहीं आई। नैनाताल का यह विस्तार सूरज की चमकीली धूप में पिघली हुई चांदी की तरह महीनों लहराता था। नैनाताल का छरछरा 1994 में तोड़ दिया गया। अब नैनाताल में पानी नहीं रुकता।

उस साल, जब पानी झूमकर बरसा, तो नैनाताल बरसों बाद पूरा भर कर रेल्वे की सागर पुलिया पार करता हुआ उस बस्ती तक जा पहुँचा था, जो लोगों ने जल–भराव क्षेत्र में अतिक्रमण करके बसा ली थी। पानी जब झुग्गियों तक पहुँच गया, तो बस्ती के कुछ लोगों ने इस डूबी तालाब के उस

कहाँ गये ये कुएँ-बावड़ी?

इस सदी के शुरू होने तक विदिशा में और इर्द गिर्द करीब 100 कुएँ और बावड़ियाँ अस्तित्व में थे, जिनमें से चौदह कुएँ, तो कुछ अन्तर से पेढ़ी शाला के पीछे ही थे। जो कुएँ मौजूद हैं, उनमें से 30 तो आज भी इस्तेमाल लायक हैं। बचे-खुचे कुओं में से इमामबाड़े के कुएँ, आमवाले कुएँ, कोकाजी के कुएँ, चौबेजी के कुएँ, काजीजी के कुएँ, ढोली बुआ के कुएँ, बालकदास की बगिया के कुएँ और मोहनगिरि के कुएँ का पानी तो दूरस्थ मुहल्लों

⇨

छरछरे का कुछ हिस्सा तोड़ दिया, जो इस तालाब का अतिरिक्त पानी निकाल देता था। पानी के दबाव ने बाकी का काम खुद कर लिया। तब से नैनाताल में पानी ही नहीं रुक रहा है। एक और तालाब नैनाताल खत्म हो गया, लेकिन यह कोई नई कहानी नहीं है।

एक–एक करके इलाके के पचास से भी ज्यादा बड़े और दो सौ से भी ज्यादा छोटे तालाब गुम हो गये हैं। इस सदी के आरंभ तक ये सभी अच्छे–खासे थे। लापता हुए कई बड़े तालाबों से तो आजादी के पहले तक सिंचाई की जाती रही है, जबकि छोटे तालाब निस्तारी थे, जो गाँव–खेड़ों की

में भी पीने के लिए ले जाया जाता था। मोहनगिरि के कुएँ का पानी दवा की तासीर का माना जाता है। पुराने वैद्य-हकीम पेट के मरीजों को इसका पानी पीने की सलाह देते थे।

इनके अलावा शंकर मंदिर की बावड़ी, पान बाग की बावड़ी, बीजा मण्डल की बावडी, रामप्रसाद वकील की बावड़ी और हवेली की बावड़ी भी पेयजल का समृद्ध-स्रोत थीं। आकार की दृष्टि से शहर की सबसे बड़ी बावड़ी हवेली की थी। जो अभी भी आधी भरी हुई है।

शहर के प्रमुख जल-स्रोतों में से एक साँकल कुआँ है। नीमताल के ⇨

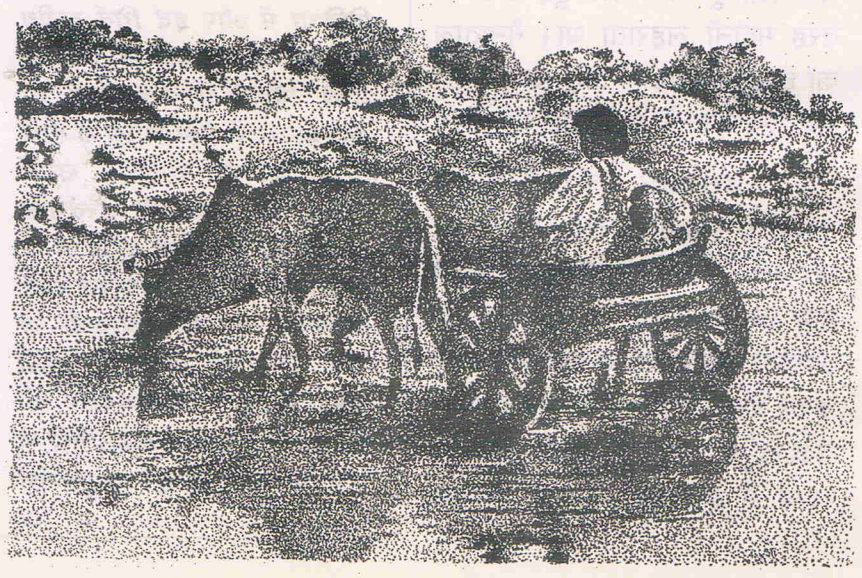

जरूरत के मुताबिक पिछले कई सौ सालों में बनाये गये थे। पिछले पचास सालों में तालाबों के लुप्त होने की प्रक्रिया इस तरीके से चली है कि उसका जरा भी शोर तक नहीं हुआ है। यह खामोश प्रक्रिया आज भी जारी है।

लापता हुए ज्यादातर तालाब जमीन के लिए आदमी की भूख का शिकार हुए हैं। जिन तालाबों और पोखरों का निर्माण सबका हित सामने रखकर बरसों–बरस में हुआ था, वे सब अपना हित सोचने वालों द्वारा चंद सालों में ही खत्म कर दिये गये।

इन तालाबों के विनाश का यह सिलसिला आजादी के पहले रियासती दौर में उसी दिन से शुरू हो गया था, जब ग्वालियर रियासत ने उनके निस्तारी स्वरूप को मिटाकर तालाबों से सिंचाई के इस्तेमाल की सोची थी। उस समय सरकारी कारिन्दों को यह ध्यान नहीं रहा कि ये निस्तारी तालाब न केवल जनता और पशुओं की पानी सम्बन्धी ऊपरी जरूरतें ही पूरी करते हैं, बल्कि उनसे जमीन भी तृप्त होती है। शायद उस समय उन्हें इसकी जरूरत भी महसूस नहीं हुई हो।

तब की ग्वालियर रियासत ने सन् 1900 के करीब इलाके–भर के तालाबों का सिंचाई के लिहाज से सर्वे कराया था। सर्वे के बाद रियासत ने विदिशा और बासौदा के चालीस से भी ज्यादा पुराने और बड़े–बड़े निस्तारी तालाबों को सिंचाई के तालाबों में बदलवा दिया। इससे कृषि उत्पादन तो बेशक बढ़ा, लेकिन तालाबों की बर्बादी का सिलसिला शुरू हो गया, लेकिन तब निस्तारी तालाबों को सिंचाई तालाबों में बदलने के बाद भी उन तालाबों में इतना पानी

किनारे यह कुआँ आज भी दो-तिहाई पानी से भरा हुआ है। ये सभी कुएँ और बावड़ी भेलसा की जनसंख्या के मान से (सन् 1951 में आबादी 19,184) पर्याप्त पानी उपलब्ध कराने में सक्षम थे, लेकिन इनकी सफाई अब वर्षों से नहीं हुई है। सन् 1948 में जैसे ही बेतवा नदी से पेयजल योजना शुरू हुई, सरकार तो सरकार, जनता ने भी अपने परम्परागत जल-स्रोतोंसे यूँ मुँह फेर लिया, जैसे उनसे न तो कभी वास्ता था और न भविष्य में पड़ेगा।

पेढ़ी स्कूल के आसपास के कुओं पर मकान बना लिये गये। कुएँ पेयजल स्त्रोत न होकर देवालयों का कचरा फेंकने के स्थान बनकर रह गये हैं। कई ⇨

अनगुना मत करो इस कहानी को

(परम्परागत जल प्रबन्धन)

अनिल यादव

तो बचा ही रहता था कि ढोर–डंगर प्यासे नहीं फिरते थे और जनता को नहाने –धोने का सुभीता बना रहता था।

तीन दशक पहले, जमीन की जरूरत और कीमतें बेतहाशा बढ़ने के साथ ही, सिंचाई और निस्तारी तालाबों की शामत आ गई। ताकतवर लोगों ने न केवल तालाबों पर अतिक्रमण शुरू कर दिये, बल्कि तालाबों की उपजाऊ जमीन अपने कब्जे में करने के लिए उनकी पालें फोड़ना भी शुरू कर दीं। सिंचाई तालाब पहले डूबी तालाबों में बदले और फिर वे भी नहीं रहे। तालाब सामूहिक सम्पत्ति से निजी सम्पत्ति में बदल गये।

उस दौर में भी जो तालाब किसी तरह बच गये थे, उन पर भी अब नई मुसीबत आई है। पिछले कुछ सालों से उन तालाबों पर सिंचाई पम्प रखे जाकर उनकी आखरी बूंद भी चूसी जाने लगी है। यह सोचे बगैर कि इसका असर गरीब ग्रामीण, कुओं–बावड़ियों, मूक जानवरों और भूमिगत जल स्तर पर क्या पड़ेगा ?

घूरा फेंकने के गड्ढों में बदल गये हैं, तो कुछ सेप्टिक टेंक बन गये हैं। लोगों ने कुओं और उनके पाटों पर भी अतिक्रमण कर के मकान बना लिये हैं। जिन कुओं के पाट पर जूते पहन कर चढ़ना पाप समझा जाता था, उनमें अब मनचले मौज आने पर कूद-कूद कर नहाते हैं। विजय मन्दिर की बेहद खूबसूरत बावड़ी भी संरक्षित इमारत घोषित होते ही सड़ते पानी के जोहड़ में बदल गई है।

♦♦♦

तरक्की के ताजा दौर में विदिशा, सिरोंज, ग्यारसपुर, उदयपुर, पठारी, लटेरी जैसी बड़ी पुरानी और मशहूर बस्तियों के साथ–साथ दूरस्थ गाँवों में बने पुराने तालाब अब या तो नहीं हैं, या बस खत्म होने ही वाले हैं। जिला मुख्यालय विदिशा में ही आज जिसे तलैया मुहल्ला कहा जाता है, वह एक छोटा–सा तालाब ही था, जिसे नष्ट करके बस्ती बसाई गई है। 'किले अन्दर' का चौपड़ा मुहल्ला भी एक पक्के छोटे चौकोर चौपड़ा तालाब के किनारे ही बसा है। यह पक्का चौपड़ा तो आज भी है, लेकिन उसके घाट पर अब मकान बन गये हैं, जिनके सेप्टिक टैंक चौपड़ा में ही खुलते हैं। इस चौपड़ा में अब पानी नहीं, गन्दी काई और घास पसरी हुई है। हाजी बली के तालाब के किनारे अब बस दरगाह और चंद कब्रें ही बची हैं, तालाब में प्लाट निकाल दिये गये हैं। फिर नैनाताल, मोहनगिरि तालाब भी थे। नैनाताल खेत में बदल गया है,

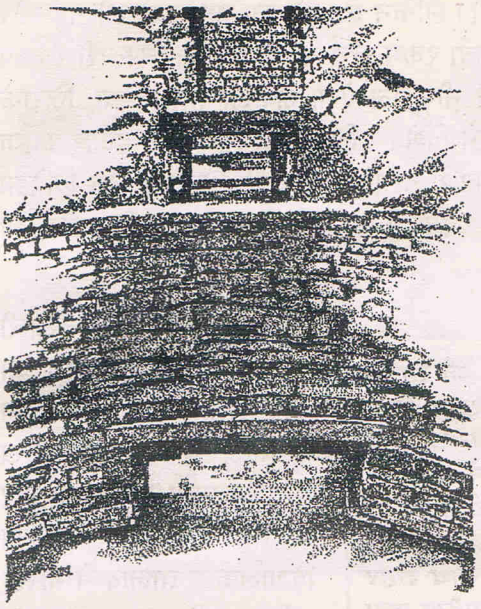

बीजा मण्डल की बावड़ी।

और मोहनगिरि के तालाब में बस्ती के परनाले खुलते है।

ये तालाब तो जनता के बीच के नासमझ लोगों ने खत्म किये हैं, लेकिन जिस बेदर्दी से नीमताल को शासन ने खुद नष्ट कराया, उसकी मिसाल वह आप है। दो नालों को रोक कर बनाया गया यह निस्तारी तालाब पता नहीं कब से विदिशा के लोगों और जानवरों के काम आ रहा था। इसकी पाल पर सैकड़ों की संख्या में नीम के पेड़ थे जिनकी वजह से इस तालाब का नाम ही नीमताल पड़ गया था।

इस सदी की शुरूआत में जब तत्कालीन ग्वालियर रियासत को पुराने निस्तारी तालाबों को सिंचाई तालाबों में बदलने की सूझी थी, तो दूसरे कई पुराने तालाबों की तरह इस पुराने तालाब पर भी सिंचाई की एक योजना बनाई गई थी और नीमताल में तब के ग्वालियर रियासत के शासक माधवराव

इनका ख्याल किसे है ?

विदिशा में जब नल-जल योजना शुरू हुई तो शहर में कुल आबादी के करीब एक चौथाई जानवर थे। यह पशुधन पानी के लिये या तो बेतवा जाता था या फिर शहर के ताल-तलइयों पर। इक्का-दुक्का पशुपालक अपने जानवरों को कुएँ-बावड़ियों पर भी पानी पिलाते थे।

⇨

सिंधिया की खुद बड़ी दिलचस्पी थी। लेकिन यह योजना वापस ले ली गई और तालाब पर एक हज़ार रुपये से ज्यादा रकम खर्च करके उसका निस्तारी स्वरूप बचाये रखा गया। तब विदिशा का नीमताल ऐसा अकेला तालाब था, जिसके निस्तारी स्वरूप पर तब के शासन ने विशेष रुचि ली थी। तब एक हज़ार रुपया बहुत बड़ी रकम हुआ करती थी और ये इसलिए खर्च किये गये थे, कि विदिशा के लोगों को नहाने, कपड़े धोने और जानवरों को पानी पिलाने की सुविधा निरन्तर बनी रहे।

नीमताल के निस्तारी स्वरूप को बहाल करने का काम 1908 तक चला। तब नीमताल में पचहत्तर लाख घनफीट पानी समाता था और तेरासी बीघा क्षेत्रफल के इस विशालकाय तालाब में बारहों महीने पानी भरा रहता था। गर्मियों में सैंकड़ों पशु नीमों के नीचे डेरा डाले रहते थे और जाड़ों में हज़ारों विदेशी पक्षी नीमताल में बसेरा करते थे। तालाब में कमल के फूलों और मछलियों की कमी नहीं थी।

लेकिन नीमताल की जगह अब घूरे के ढेर हैं, सड़ते हुए डबरे हैं, सीलन में डूबी बस्ती इन्दिरा कॉम्प्लेक्स है, बस स्टेण्ड है, सब्जी मण्डी है और है सुलभ कॉम्प्लेक्स, जिससे निकले गन्दे पानी ने नीमताल को एक बदबूदार जोहड़ में

धीरे-धीरे शहर के तालाबों की शामत आई। उसके बाद कुएँ-बावड़ी खत्म हुये। बेचारे जानवर कहाँ जाते ! वे सब भी नगरवासियों की तरह टोंटी वाले नलों के गुलाम हो गये। चंद बरस पहले जो नल-जल योजना सड़सठ हज़ार लोगों के ही लिये ही थी, आज एक लाख आबादी के साथ शहर के हज़ारों जानवरों को भी पानी मुहैया करा रही है। पशु आदमी से चार गुना ज़्यादा पानी पीते हैं। नीमताल समेत शहर के तमाम तालाबों के विनाश के बाद नल-जल योजना पर पड़े इस दबाव की ओर किसी का ध्यान नहीं है।

गाँव शहरों के सारे पुराने कुओं पर पाट और घिरनी की तरह एक बेहद ज़रूरी चीज़ हुआ करती थी- चुरई, चरई या चाट। पशुओं को पानी पिलाने का पुख्ता इंतज़ाम। इलाके भर में पत्थर को कोलकर बनाई गई ये नाद-होद या चुरई, कुओं के किनारे आज भी पड़ी नज़र आती हैं लेकिन खाली, सूखी या टूटी। तालाब पूर दिये गये। चुरई का ज़माना नहीं रहा और जानवर ! वे न तो नल कूप का बटन दबा पाते हैं, न हैन्ड पम्प चला पाते हैं और ना ही अपनी मर्जी से नलों की टोंटी खोल पाते हैं। विकसित समाज ने उनसे तालाब और चुरई की व्यवस्था छीन कर गन्दे, बदबूदार पानी की प्रदूषित नालियाँ दे दी हैं।

***

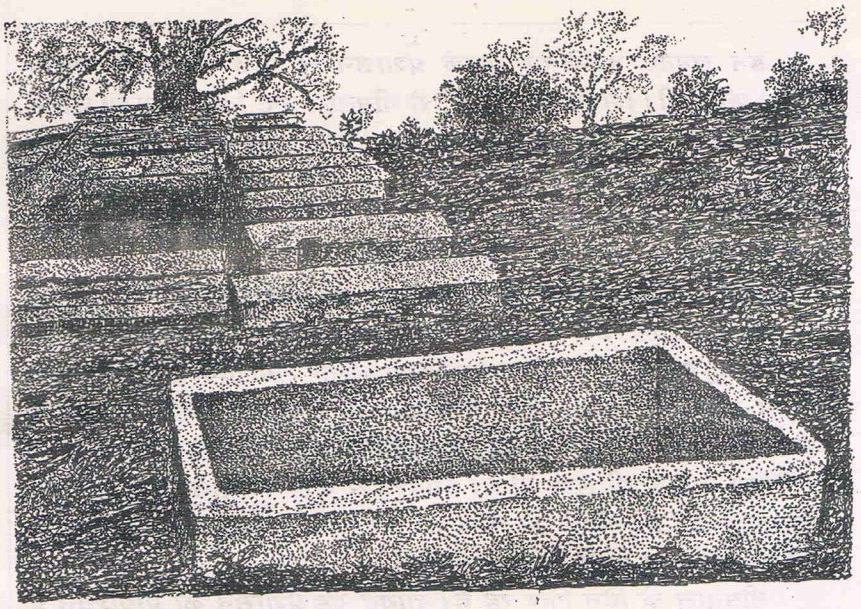

बावड़ी के साथ चुरई, यानि कि पशुधन की भी चिन्ता।

बदल दिया है। जिस तालाब में कभी हाथी डुब्बा पानी था, उसकी बदबूदार दलदल में अब तो सूअर भी नहीं डूबते।

आज का नीमताल हमारी नयी सोच का नमूना है। जिस पुराने तालाब का निस्तारी स्वरूप बदलने में राजा के हाथ ठिठक गये थे, उसे निर्वाचित जन–प्रतिनिधियों ने बेरहमी से पुरवा दिया। सोचा गया कि इस तालाब को पूर देने से निकली जमीन से बेहिसाब फायदे होंगे, तालाब में घूरे डलवाये जाने लगे। लोग बतातें हैं कि उन्हीं दिनों गिग्गिक नाम का एक पागल भी तालाब की पाल पर मँडराया करता था। उसे बस एक ही

लौट के बुद्धू घर को .....

पिछले कुछ सालों में विदिशा में पानी की किल्लत जब बहुत हो गई तो प्रशासन को अपने नीमताल की सुध आई। तय किया गया कि उसे पुनर्जीवित किया जाये।

मौके पर जब नष्ट कर दिये गये नीमताल से निकली ज़मीन की नापतोल की गई तो पता चला कि तालाब के पेटे में बस स्टेण्ड, इन्दिरा कॉम्पलेक्स, महिला हॉस्टल, सब्जी मण्डी, माईक्रोवेव स्टेशन और सुलभ कॉम्पलेक्स बन चुके है। बाकी बची ज़मीन में कन्या महाविद्यालय और स्टेडियम प्रस्तावित हैं। स्टेडियम का शिलान्यास भी किया जा चुका है।

⇨

इन सबको दरकिनार करके प्रशासन ने 1996 में अपनी गलती सुधारने की ठानी। जितनी लापरवाही से नीमताल नष्ट किया गया था उतनी ही संजीदगी से पुनरोद्धार की योजना बनाई गई। योजना के मुताबिक चार हैक्टेयर में जलाशय और बाकी में बगीचा, झूलाघर, दौड़पथ, वृक्षारोपण या इसी तरह के दूसरे निर्माण करना तय हुआ। योजना के मुताबिक पाँच साल में सत्ताईस लाख रुपये खर्च किये जाना हैं।

और सचमुच जून 96 में नीमताल में बुलडोजर चलने लगे। बारिश आने तक नीमताल फिर से अंगड़ाई लेने लगा। जून 97 तक नीमताल का 15 हजार क्यूबिक मीटर से भी ज़्यादा कचरा किनारे लगा दिया गया। नीमताल का नाम सार्थक करने की मुहिम में वन-विभाग ने स्कूली बच्चों की मदद से ढाई हज़ार नीम के पौधे न केवल लगा दिये हैं बल्कि उनकी सुरक्षा के लिये वन-विभाग ने बाड़ भी लगा दी है। विदिशा में जहाँ ज्यादातर नलकूप सूखे निकलते हैं वहीं इन पौधों को पानी देने के लिये सूखे तालाब में खोदे गये नलकूपों से भरपूर पानी निकल रहा है।

नीमताल के दिन फिर रहे हैं। शायद यह प्रशासन का प्रायश्चित्त है कि इस योजना को ऊपर से मदद में छदाम भी नहीं आई है, फिर भी दस महीने बाद बुलडोजर चल रहे हैं।

◆◆◆

खब्त था– किसी भी नुकीली चीज से वह दिन भर नीम के पेड़ों की छाल उतारता रहता था। गिग्गिक की इस हरकत से एक–एक करके सभी नीम सूख गये।

एक पागल ने नीम खत्म कर दिये और कुछ पागलों ने तालाब खत्म कर दिया, नीमताल खत्म हो गया। अब न नीम हैं, न तालाब में पानी। और हाँ, नीमताल के आसपास के कुओं में अब पहले जैसा जल स्तर भी नहीं रहता है। बीच में एक साल ऐसा भी गुजरा, जब पानी कम बरसने से नीमताल में वो थोड़ा–सा पानी भी नहीं आया, जो बरसात में आ जाता था। तब नगरपालिका ने घूरों के बीच बने गड्ढे में एक टैंकर पानी डाला था, तब जाकर कहीं मंगल–गीत गाती महिलाएँ भुजरियाँ सिरा पायी थीं।

सिर्फ नीमताल या विदिशा के दूसरे तालाबों का ही ऐसा दुखद अंत नहीं हुआ, इलाके–भर के तालाबों की अब यही हालत है और नतीज़े में इलाके–भर में साल–दर–साल जल संकट बढ़ता ही जा रहा है।

पूरा कुनबा बलिदान किया था तब भरा था बड़ोह का तालाब

बड़ोह के एक गड़रिये को संत ज्ञाननाथ (गैयननाथ) की कृपा से बहुत धन मिल गया था। संत के प्रति आभार प्रगट करने के लिए गड़रिये ने मंदिर के साथ–साथ बड़ोह का तालाब भी बनवाया था। तालाब तो बन गया, लेकिन उसमें पानी नहीं रुकता था। तालाब भरता था ओर खाली हो जाता था, तब गड़रिये ने तालाब को जलपूरित करने के लिए अपने दो बेटों, बहू और इकलौते बेटे की बलि दे डाली। बस तब से इस विशाल तालाब में पानी रुकने लगा। यह कहानी बड़ोह के ग्रामीणों ने 1875 के आसपास अंग्रेज पुरातत्ववेत्ता कनिंघम को सुनाई थी। शायद हुआ यह था कि तालाब के निर्माण में गड़रिये के दो बेटे, बहू और पोते ने श्रम करते हुए अपने प्राण न्यौछावर कर दिये थे। उनका यह बलिदान जब कहानी के रूप में चला, तो बिगड़ते–बिगड़ते बलि देने तक आ गया। जो भी हुआ हो, पर आज हकीकत यह है कि उन्होंने अपना बलिदान देकर जिस तालाब को जलपूरित किया, उसे मिटाने में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ी जा रही है।

कभी बड़ोह–पठारी एक ही बस्ती थी,नाम था बटनगर। बटनगर उजड़ते–उजड़ते दो गाँवों की शक्ल में रह गया है– पठारी और बड़ोह। बड़ोह गाँव के एक तरफ है, पठारी का तालाब और दूसरी तरफ है, बड़ोह तालाब।

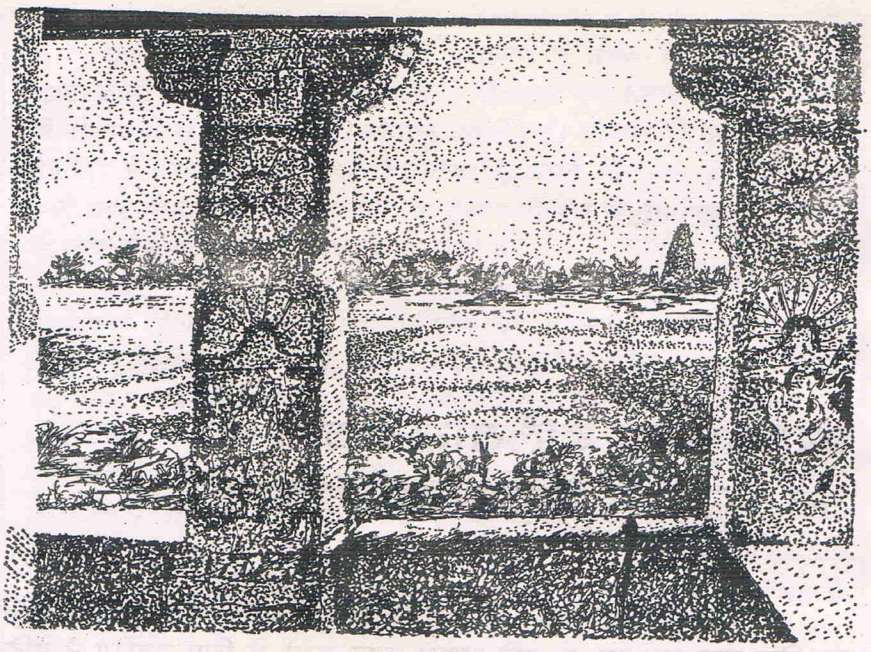

बड़ोह का तालाब इस पार सोलहखम्बी उस पार गड़रमल मन्दिर

गैयननाथ पहाड़ दोनों गाँवों की सीमा बनाता है। इस पहाड़ की उत्तरी ढलान का पानी यदि पठारी के तालाब में जाता था, तो दक्षिणी ढलान का पानी 'रैक' में से होते हुए बड़ोह तालाब में समाता था।

बड़ोह के तालाब के किनारे बना गड़रमल का मंदिर पुरातत्ववेत्ताओं के मुताबिक नवीं सदी का निर्माण है। यदि ऐसा ही है, तो तालाब कम–से–कम एक हज़ार साल पुराना तो है ही। इस तालाब के तीन तरफ बहुत ऊँची पाल है। पाल की चौड़ाई भी कम नहीं, ढाई जरीब है। मिट्टी के पाल के अन्दर के हिस्से में पत्थर की मोटी–मोटी शिलाएँ लगी हैं; लेकिन वे अब पूरी तरह कभी नहीं डूबतीं क्योंकि पहाड़ की दक्षिणी तलहटी में खदान खुद जाने से पानी तालाब तक पहुँच ही नहीं पाता है।

तालाब के किनारे गडरमल का मंदिर, मढ़िया, दशावतार, सोलहखंबी जैसे पुरातात्विक महत्त्व के स्थल तो हैं ही, भरपूर पानी अपने पेट में धरे पुराने कुएँ–बावड़ियाँ भी हैं। पुराने लोगों के मुताबिक इस विशाल तालाब में पहले बावन सीढ़ियाँ थीं, पर अब तो दस–बारह सीढ़ियाँ ही नजर आती हैं, बाकी कीचड़ में समा चुकी हैं।

तालाब और उसके साथ की बावड़ियों की पता नहीं कब से सफाई नहीं हुई। बड़ोह में हैण्ड पम्प और जल–नल योजना लग गई है, लेकिन जब हर साल गर्मियों में ये नई व्यवस्थाएँ दम तोड़ देती हैं, तो काम देते हैं, प्रभु की बावड़ी और चौपड़ा कुआँ। बड़ोह तालाब की पाल की एकदम जड़ में बनी यह बावड़ी काफी कुछ पुर जाने पर भी कभी सूखती नहीं है। तालाब के सहारे जिन्दा यह बावडी बड़ोह के लोगों को प्यासा नहीं रहने देती। भीषण गर्मी में बड़ोहवासियों को पानी का दूसरा सहारा है, चौपड़ा कुआँ। पठारी तालाब के दक्षिण पूर्वी किनारे पर बना सैकड़ों वर्ष पुराना यह चौकोर कुआँ मीठे पानी का समृद्ध स्रोत है।

सौ बीघा से भी ज़्यादा का बड़ोह तालाब अब तेजी से पश्चिम की ओर पुरता चला जा रहा है। सरकारी कागज़ों में अभी भी तालाब में औसतन चौदह हैक्टेयर क्षेत्र में पानी भरा बताया जाता है, लेकिन इस पानी में गहराई नहीं है। 'रैक' मिट गई है, पश्चिम का आधा तालाब खेतों में बदल दिया गया है। पाल पर खड़े हजारों सीताफल, कबीट और आम के पेड़ पिछले कुछ सालों में काट दिये गये हैं। रियासत के समय इस तालाब में जल–पक्षियों और मछलियों के शिकार पर पाबंदी थी, हजारों जल–पक्षी इस बारहमासी तालाब में वक़्त–बेवक़्त बसेरा करते थे,पर अब खुलकर शिकार होने से जल–पक्षी नहीं आते। तालाब में सिंघाड़े की खेती किये जाने से अब तालाब में मछलियाँ भी खत्म–सी ही हैं। फिर, तालाब के दक्षिण में पत्थर–खदानें खुद जाने से उनकी मिट्टी बहकर अब तालाब में ही आती है। तालाब साल–दर–साल उथला ही होता जा रहा है।

तालाब से निकाली गई नहर से तो पानी निकाला ही जाता है,अब तो हर साल पाल पर रखे बीसियों सिंचाई पम्प भी इस तालाब से पानी की आखिरी बूँद तक चूसने की कोशिश करते हैं।

पानी के लिए समर्पित लोगों का यह कीर्ति–स्मारक बस अब खत्म होने ही वाला है। अगली सदी में सिर्फ बच्चों को सुनाने के लिए कहानी बचेगी कि कभी ऐसे भी लोग हुआ करते थे, जिन्होंने तालाब बनाने के लिए अपना पूरा कुनबा न्यौछावर कर दिया था।

●

चुल्लू भर पानी ही बचता है, पठारी तालाब में

पहला पानी बरसते ही मंगला सिलावट पठारी में डोंडी पीटकर ऐलान करता– 'खलक खुदा का मुलक बाश्शाका...' और अगले दिन सवेरे हर घर से एक आदमी तालाब के घाट पर आ जाता था । जो खुद नहीं आ पाते वे अपनी ऐवज में किसी और को भेजते।

फिर सब लोग 'बूढे नवाब' के पीछे चल देते, पखी साफ करने, लेकिन इसकी तैयारी बहुत पहले से शुरू हो जाती थी। पठारी अट्ठाईस गाँव की बहुत छोटी–सी रियासत थी। नवाब को फुरसत बहुत थी और काम निकालने का तजुरबा भी। गर्मियाँ जब चरम सीमा पर होतीं, तो सुबह–शाम नवाब घाट पर होते और साथ में होतीं आमों की डलियाँ। 'बूढे नवाब' जोर से आम तालाब में फेंकते और बच्चों का झुण्ड कूद जाता तालाब में । जिसके हाथ आम लगता, वह उसी का ईनाम होता। आमों के लालच में पचासों बच्चे हर रोज सुबहो–शाम तालाब पर इकट्ठे होते ।

फिर जब डोंडी पिटती, तो ये बच्चे भी बड़ों के साथ 'बूढे नवाब' के पीछे लग लेते, पखी साफ करने। पखी क्या थी, एक अनगढ़ पत्थरों की बनी दीवाल थी, जो इसलिए बनाई गई थी कि गैंयननाथ पहाड़ से उतरा पानी, फालतू

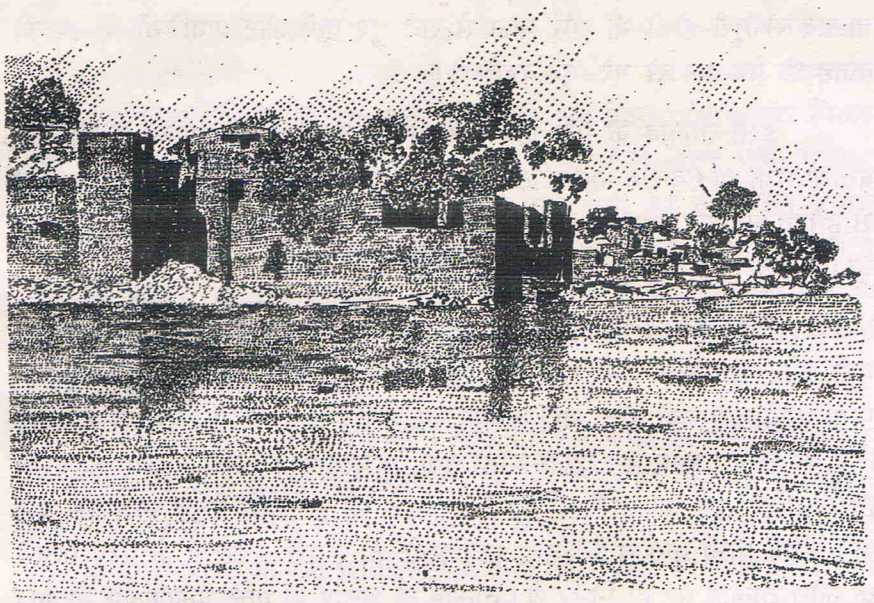

पठारी का
तालाब।

न बह कर, तालाब की ओर जाये। लगभग दो किलोमीटर लम्बी पखी पठारी रियासत की सीमा से शुरू होती थी। अपने हिस्से के पहाड़ पर गिरी हर बूंद को तालाब तक ले जाने की सालाना कोशिशों से पखी ने अच्छे खासे नाले का आकार ले लिया था। करीब दो सौ मीटर के तीखे ढलान की वजह से बारिश में पानी का बहाव बहुत तेज रहता था। बरसात के बाद मवेशियों और इंसानों की आवा–जाही से यह नाला गन्दा हो जाता था। दीवाल के पत्थर लुढक आते थे। गोबर जमा हो जाता था और झाड़ियाँ उग आती थीं। बच्चे और बड़े सब मिलकर, पखी की सफाई करते, झाड़ियाँ काट डालते और दीवाल की मरम्मत करते, ताकि गैंयननाथ पहाड से तालाब की तरफ बहते पानी के रास्ते में कोई रुकावट न आये और वह आसानी से तालाब में समा जाये।

यही तालाब तो था, पठारी का जीवन आधार। तालाब पक्का बना हुआ था। पूरब की ओर जो पाल थी, उसमें पत्थर की मोटी–मोटी शिलाएँ लगाई गई थीं, ताकि वे पानी के थपेड़े बरदाश्त कर सकें। मछलियों के शिकार पर सख़्त पाबंदी थी। तालाब का पानी इतना साफ रहता था कि तली में पड़ा चमकता सिक्का भी बच्चे गोता लगाकर निकाल लाते थे। गाँव की निस्तारी जरूरतें इसी

भूरी बावड़ी - सिरोंज

तालाब से पूरी होती थीं और पाल से सटे हुए कुएँ और बावड़ियाँ भी इसकी वजह से पेयजल से भरे–पूरे रहते थे।

इसी तालाब के एक हिस्से में दीवाल खड़ी करके महलों में 'डुहेला' बनाया गया था। करीब 100 फीट लम्बा और पचास फीट चौड़ा यह डुहेला पानी से हमेशा लबालब रहता था। उसमें तालाब से पानी की निर्बाध पूर्ति का इन्तजाम था। डुहेला एक किस्म का 'शाही स्विमिंग पूल' था।

पठारी की दक्षिणी बस्ती पेयजल के लिए तालाब के किनारे के 'मोतिया कुएँ' और कुछ नीचे की तरफ बनी 'करेली की बावड़ी' पर निर्भर थी। इनका पानी कभी कम नहीं होता था। तालाब का पानी मिट्टी में से रिस कर कुदरती तौर पर छनता हुआ इन जल–स्रोतों तक पहुँचता था। उत्तरी पठारी की बस्ती हीराबाग के कुएँ का पानी पीती थी। तालाब की सतह से बहुत नीचे बने इस कुएँ में भी पानी कम नहीं पड़ता था। पानी की ऊपरी ज़रूरतों के लिए पठारी के लोग तालाब पर ही निर्भर थे। तालाब के अन्दर ही एक 'बेलाकुआँ' भी था। बस्तीवाले तालाब पर ही नहाते–धोते और किनारे बने शंकर जी के मंदिरों पर

जल यज्ञ अधूरा है।

भाल बामोरा का फूटा तालाब ग्रामीणों की इच्छा शक्ति और अनुभवहीनता, दोनों की कहानी एक साथ सुनाता सा लगता है। गंज बासौदा से पठारी जाते समय भाल बामोरा से कुछ ही आगे दाहिने हाथ पर बने इस तालाब को गाँव वालों ने यज्ञ में बचे पैसों से बनवाया था। बाद में, उस में कुछ पैसा पंचायत ने भी लगाया। यह तालाब नीचे खेतों में बदल दिये गये उस पुराने तालाब के हट कर है, जो पता नहीं कब फूट गया था।

1975 में भाल-बामोरा में एक बड़ा यज्ञ हुआ। भरपूर खर्च के बाद भी काफी पैसा बच गया। गाँव वालों ने सोचा कि बचे हुए पैसों से तालाब बनवा दिया जाय। तीन तरफ पहाड़ियों से घिरी इस जगह को सबसे ठीक मानकर चौथी तरफ पाल डाल दी गयी, बाद में वहाँ की ग्राम पंचायत ने भी तालाब पर कुछ काम करवाया, लेकिन तकनीकी कला कौशल की कमी और तालाब बनाने का अनुभव न होने से सैकड़ों बीघे में फैले पानी का दबाव पतली और कमजोर पाल सह नहीं पाई। ताल फूट गया। जल-यज्ञ अधूरा ही रह गया। बस, तब से तालाब फूटा पड़ा है अगले यज्ञ के इंतजार में।

◆◆◆

जल ढारते। घाट और मंदिर तो अब भी हैं, पर लोग अब नहाने और शिवलिंग पर जल ढारने नहीं आते। तालाब के अकेले जलस्रोत पखी में अब पत्थर की खदान खुद गई हैं। पहाड़ का पानी पता नहीं, अब किस ओर बहकर निकल जाता है, तालाब अब प्यासा ही रह जाता है। जो थोड़ा–बहुत पानी पहुँचता भी है, वह खदानों से निकली मिट्टी अपने साथ बहा कर लाता है। रिकार्ड में इस तालाब का औसत जल–क्षेत्र आज भी चालीस बीघा ही माना जाता है, पर अब तालाब पहले जैसा गहरा नहीं रहा है, उथला ही होता जा रहा है। अब तो कई बरस हो गये, तालाब पूरा भर कर उफना भी नहीं है, जिससे उसकी गंदगी बढ़ती ही जा रही है।

तालाब के किनारे तीन–तीन शिव मंदिर हैं। पहले गर्मियों में श्रद्धालु शिवलिंगों पर जल से भरे घट रखते थे, तालाब से स्नान कर लौटते वक़्त वे एक लोटा पानी घट में उड़ेल जाते थे, यह क्रम टूटे वर्षों गुजर चुके हैं। गन्दे और बदबूदार पानी का घट शिवलिंग पर कैसे धरें ! और ताजा व साफ पानी लायें, तो लायें कहाँ से ! अब तो पानी के लिए अभिशप्त इस बस्ती में पेयजल छः किलोमीटर दूर खड़ाखेड़ी गाँव के नल–कूपों से आता है। बिजली की आँखमिचौली और पाइपों के फूटने की वजह से पठारी के लोग अब भी पुराने जल–स्रोतों पर ही निर्भर हैं ।

कभी तालाब के किनारे शौच जाने वालों को नवाब के हुक्म पर अपनी गन्दगी खुद उठाकर फेंकनी होती थी। दूसरी बार ऐसा करते पकड़े जाने पर उनके पाँव तालाब किनारे पड़ी लकड़ी की 'डुढ़िया' में बतौर सजा फँसा दिये जाते थे, हर बुधवार के बाज़ार में मुनादी फिरती थी कि तालाब के पाल पर शौच के लिए कोई न जाये। मुनादी खासतौर पर उन लोगों को सचेत करने के लिए होती थी, जो दूसरे गाँवों से हाट में खरीदारी करने आते थे और पठारी के रिवाज से नावाकिफ होते थे।

लेकिन कल जहाँ सज़ा देने वाली 'डुढ़िया' पड़ी हुई थी, आज वहीं देवल मंदिर से करीब सौ मीटर दूर घाट पर ही पठारी के सफाईकर्मी, बस्ती भर का मैला डाल जाते हैं, जो बरसात के पानी के साथ बहकर तालाब में ही पहुँचता है।

बन्जारों ने बनाया था इसे

बन्जारों के टांडे आते थे। सैकड़ों–हज़ारों बैलों पर लदा नमक और दूसरे देहात की जरूरत का सामान लेकर। वे बाबाजी के घटेरा में डेरा डालते और यहीं से अपनी बोड़ी (बैल पर लदा सामान) लेकर आसपास के गाँवों में व्यापार करने निकल जाते। घटेरा के आसपास चरने को तो खूब था, पर पानी

सूखता घटेरा
ताल
कहाँ जायेगा
प्यासा पशुधन।

की किल्लत थी और जब गर्मियों में फसल आने के बाद बन्जारों के माल की खरीद–फरोख्त पूरी तेजी पर होती थी तब आसपास के नदी–नालों का पानी छौंटने लगता। जनश्रुति के अनुसार, बन्जारों ने अपनी व्यापारिक सहूलियत के लिए घटेरा का तालाब बनवाया था। इसी तालाब के पाल पर निराकार ईश्वर की उपासना करने वाले एक छोटे–से सम्प्रदाय की गुरुगादी बन जाने के बाद इसे नाम मिल गया, 'बाबाजी का घटेरा'। तालाब बन जाने के बाद आसपास के जंगलों में चरने को तो खूब था ही, भारवाहक पशुओं को पानी भी भरपूर हो गया। बन्जारे उस इलाके के थे, जहाँ पानी की अक्सर कमी रहती थी, सो तालाब बनाने–बनवाने की भरपूर समझ थी उनमें। उन्होंने घटेरा के दक्षिण–पूर्व की ओर लकडया पहाड़ से बह कर उत्तर की ओर फालतू बह जाने वाले पानी को पहले छोटे तालाब फुरतला में रोका, फिर उसके पानी को लकडया पहाड़ के पश्चिम में बने बड़े तालाब में पहुँचाया।

उन बन्जारों ने बड़े तालाब की सुरक्षा की पुख्ता व्यवस्था भी की, ताकि पानी ज़्यादा होने पर पाल फूटने न पाये। सैंकड़ों साल पहले बने इस तालाब की पाल के अंदर ऐसी पक्की नालियाँ बनायी गई हैं कि पानी एक निश्चित सतह पर पहुँचने के बाद उनमें होकर अंदर–ही–अंदर बहने लगता था। बहुत चौड़ी पाल के भीतर ये नालियाँ आज भी काम कर रही हैं।

बाद में, मरम्मत के अभाव में, तालाब सूखने लगा। एक बार भण्डारे के वक़्त, जब पानी की कमी समझ आयी, तो गुरुगादी के महंत ने तालाब

मौड़ा-मौड़ी के खुल गये भाग, बींद गई जल मच्छी

भोइयों के ऐसे गीत अब घटेरा में सुनाई नहीं देते। ढिमरयाई (भोइयों के परम्परागत नृत्य और गीत) भी अब जब-कभी ही होती है। जब तालाब का पानी ही हिलोरें नहीं ले रहा, तो मन में हिलोर कैसे उठे। अब न मच्छी रही, न सिंघाड़ी तालाब के बूते कभी आत्मनिर्भर रहे भोई। अब खदान मजदूर बन चुके हैं।

जब तालाब भरा पूरा था, तो उसमें दस-पन्द्रह किलो तक की मछलियां मिल जाती थीं। सामल, बाम, पड़ीन, कुरसा, करोंट, कमा, छिंगने, सभी तरह की अच्छी-बुरी, छोटी-बड़ी मछलियाँ घटेरा तालाब में होती थीं। इनसे खूब गुजर हो जाती थी, गाँव के भोइयों को। यदि कुछ कसर रह जाती तो फिर सिंघाड़ी से पूर पड़ जाती थी।

⇨

अब तालाब में क्रिकेट।

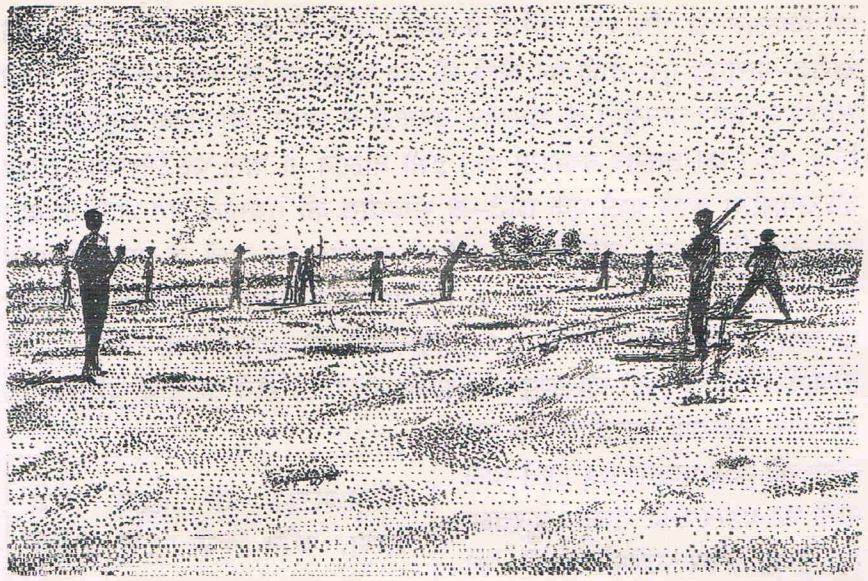

के बीच में खुदाई करवाई। अभी भी गर्मियों में सिर्फ उसी जगह पानी बचता है। गाँव वाले उसे मदागन कहते हैं।

कुछ बरस पहले तक तालाब में सर्दियों के दिनों में पुरैन फूलती थी। महीनों ताल–चिरैयाँ तालाब में डेरा डाले रहती थीं, किनारे के सभी सातों कुओं में भरपूर पानी रहता था। जब से सिंचाई के लिए इस तालाब का पानी खाली किया जाने लगा है, मदागन को छोड़कर पूरा तालाब सूख जाता है। पुरैन की जगह तालाब में अब बेशरम का घना जंगल खड़ा हो गया है । किनारे के बड़,

वैशाख का महीना आते ही भोई बांस गाड़कर बनाये पानी के खेतों की तली में सिंघाड़ी की बेलें खुरस देते। बरसात में तालाब का पानी बढ़ता, तो बेलें भी बढ़ती जातीं। सिंघाड़ी फूलती, फिर बड़े-बड़े पत्तों के नीचे सिंघाड़ियों के गुच्छे लगते। भोई दिन-भर छोटे-छोटे डोंगों में बैठकर सिंघाड़ी तोड़ते और फिर पटूरों (मिट्टी के बड़े बड़े काले मटके) में भरकर भट्टियों पर चढ़ा देते। सिंघाड़ी बदरंग न दिखे, इसलिए ऊपर से चाँचों के गटा (कंद) डाल देते। इनसे सिंघाड़ी काली और सुन्दर दिखने लगती। चाँचें भी तालाब में ही होती थीं। तालाब में मनों सिंघाड़ी होती और गाँव-गाँव, बाज़ार-बाज़ार बिकने जाती।

⇨

इमली और महुए के पेड़ अब पाल पर नहीं हैं और नतीजा ? अब तालाब के बीच बने कुएँ और पाल से सटे रामसागर और गंगाजली नामक कुओं को छोड़कर बस्ती के सारे कुएँ सूख जाते हैं। पानी कई किलोमीटर दूर से बैलगाड़ी या ट्रेक्टरों पर टंकियों से आता है। रामसागर में भी सिर्फ नाम को ही पानी बचता है। कुएँ में 'चौ' आ जाती है। अब तो हर साल गर्मियों में कई ग्रामीण परिवार गाँव छोड़ उन खेतों में डेरा डाल देते हैं, जहाँ उनके कुएँ हैं। खाना बनाना, खाना, नहाना–धोना सब खेतों के कुओं पर होता है, वहीं उनका पशुधन रहता है। ये परिवार घटेरा के अपने घरों में बस रात को सोने के लिए आते हैं।

मच्छी और सिंघाड़ी, भोइयों के जीवन का बड़ा सहारा थी। लेकिन अब ये गुजरे जमाने की बातें है। जब तक तालाब में मच्छियाँ और सिंघाड़ी होती रहीं, ढिमरयाई भी खूब होती रही। अब तालाब का पानी नहीं सूखता, भोइयों के जीवन का रस सूख जाता है। तालाब खत्म, मच्छी और सिंघाड़ी खत्म, सो, ढिमरयाई भी खत्म।

अकेले घटेरा में ही नहीं, जहाँ-जहाँ तालाब नष्ट किये गये हैं, वहाँ-वहाँ उन पर निर्भर भोइयों की ज़िंदगी नरक बन चुकी है। पानी अब उनसे कोई भरवाता नहीं, डोलियों का चलन जमाने पहले खत्म हो चुका। नदियों की रेत समेट ली गई, सो अब उनमें बंगा, चीमरी, तरबूज करने की गुंजाइश नहीं रही। भोई अब गाँवों में भूमिहीन मजदूर बन गये हैं या फिर शहरों में रिक्शा चालक।

***

माना जाता था कि इस तालाब से निकली ज़मीन में जो 'नास' (लोहे का हल) चलायेगा, उसका नाश हो जायेगा। एक बार, कभी किसी गाँववाले ने तालाब की ज़मीन को आबाद करने की कोशिश की तो उसका लड़का संयोग से साँप के काटने से मर गया। जब तक लोगों में यह भय रहा, इस तालाब पर अतिक्रमण करने का साहस किसी ने नहीं किया, पर अब हर साल उथले होते जा रहे तालाब में अतिक्रमण की होड़ शुरू हो गई है, सो अब हैरत भी क्या, जो पास के कुएँ रीते ही रह जाते हैं !

●

नहीं रख पाये मान, मानसरोवर का सो अब प्यासे हैं

बड़ा पुराना नगर है ग्यारसपुर। अब तो बस एक छोटी–सी बस्ती ही रह गया है, लेकिन उसके खण्डहर सोलह सौ हैक्टेयर में बिखरे पड़े हैं। इसी ग्यारसपुर में सत्रहवीं सदी में गौंड राजा मानसिंह ने दो पहाड़ियों की तलहटी में पानी रोक कर एक खूबसूरत झील बनवाई थी। निर्माता के नाम से ही झील का नाम चल पड़ा, मानसरोवर। झील के एक हिस्से में बावड़ी आज भी है। यह बावड़ी ग्यारसपुर के महल के पानी का स्रोत थी। महलों से नीचे बावड़ी तक पक्की बंद सीढ़ियाँ थीं। महल अब भी है, बावड़ी अब भी है, सीढ़ियाँ अब भी हैं, लेकिन बाबड़ी में पानी नहीं रहता। इस बावड़ी में ही क्यों, मानसरोवर के ठीक नीचे छीपाकुआँ और खस

जलस्रोत कौन बचायेगा ?

ग्यारसपुर में मालादेवी के मंदिर के ठीक नीचे बहुत पुराना तालाब भी था, तालाब चाँदलाबली पहाड़ को गढ़ पहाड़ से एक मील लंबी पाल के जरिये जोड़कर बनाया गया था। आज ऊपर मालादेवी का मंदिर सुरक्षित है, लेकिन नीचे का तालाब ? पता नहीं क्या हुआ !

ऐसे ही, संत गैयननाथ की कृपा से अकूत धन पाने वाले गड़रिये ने बड़ोह में मंदिर के साथ-साथ, सुन्दर और विशाल तालाब भी बनवाया था। तालाब के निर्माण में गड़रिये के

⇨

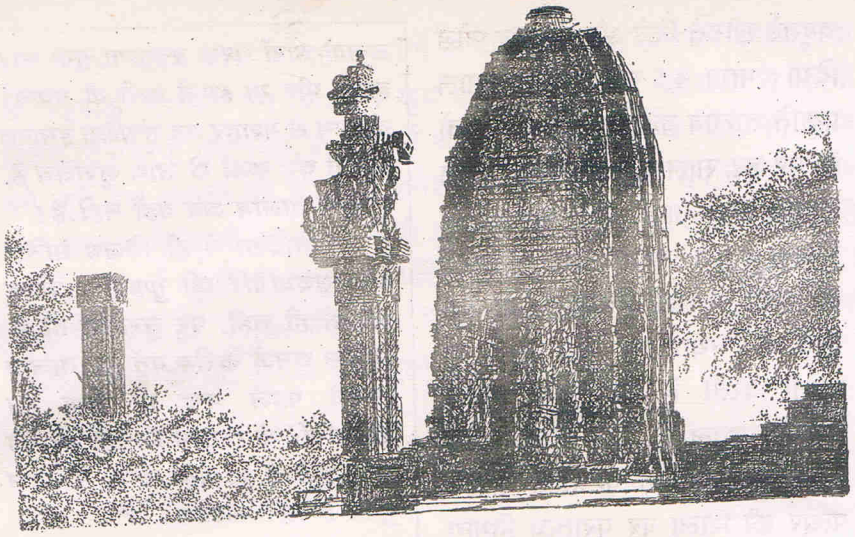

बड़ोह का गड़रमल मन्दिर, तालाब तो बस खत्म हो चला है।

बावड़ी भी अब सूख जाते हैं। गर्मियों में तो अब ग्यारसपुर के सभी कुओं–बावड़ियों में पानी का टोटा पड़ जाता है।

पूरे परिवार ने जीवन बलिदान कर दिया था। आज गड़रमल का मंदिर पुरातत्व विभाग की देखरेख में है, पर तालाब लगभग दम तोड़ चुका है।

ग्यारहवीं सदी में राजा उदयादित्य परमार ने उदयपुर में खूबसूरत शिवमंदिर के साथ ही उदयसमुद्र नामक विशाल तालाब भी बनवाया था, लेकिन मंदिर तो अपनी पूरी शान से आज भी खड़ा है, उदयसमुद्र का कोई पता-ठिकाना नहीं है।

विदिशा में हाजीबली के मकबरे के साथ ही एक विशाल तालाब भी

⇨

कहावत थी कि 'ताल के इस पार या उस पार, ऊपर बड़ की डार, माया अपरम्पार, ना जाने किस पार'। माया अपरम्पार ही थी, लेकिन न इस पार, न उस पार, बल्कि मानसरोवर में ही थी, अकूत पानी की शक़्ल में। हर साल बारिश में पहाड़ों का पानी छल–छल बहता आता और मानसरोवर में समा जाता। धूप में पानी की ऊँची–ऊँची लहरें चांदी की तरह चमकतीं। मानसरोवर की इस अनमोल माया से आसपास के कुएँ भी समृद्ध रहते थे, लेकिन इस माया को लोगों ने पहचाना नहीं, आसपास

चबूतरे खोदते फिरे और तालाब फोड़ दिया। माया बह गई, अब हर साल प्रकृति तालाब को लबालब भरती तो है, पर हर साल वह अनमोल दौलत फिजूल बह जाती है। मानसरोवर सूखता है, तो उसके नीचे की तरफ की बस्ती के सारे कुँए बावड़ियाँ रीत जाते हैं। ग्यारसपुर अब तेजी से बढ़ती बस्ती है जो अपने पुराने दर्शनीय स्थल के लिए जानी जाती है। पुलिस स्टेशन के ठीक सामने पत्थर की शिला पर पुरातत्व विभाग ने दर्शनीय स्थल की जो सूची खुदवा रखी है, बस अब उसी में बचा है, मानसरोवर तालाब का नाम। पर्यटक जब मानसरोवर तालाब को देखने जाते हैं, तो उन्हें तालाब की जगह घने जंगल और ऊँचे पहाड़ों के बीच खेत नजर आते हैं, जहाँ कभी मानसरोवर तालाब था।

उसके चारों तरफ बनवाया गया था। हाजी पीर या हाजी बली के मकबरे के नाम से मशहूर यह संरक्षित इमारत अपनी चंद कब्रों के साथ सुरक्षित है, लेकिन तालाब अब वहाँ नहीं है।

विदिशा में ही विजय मन्दिर और उदयगिरि की गुफाएँ आंशिक रूप से ही सही, पर सुरक्षित तो हैं, लेकिन उनके करीब बने हुए तालाब ज़माने पहले नष्ट हो चुके हैं। मोहनगिरि के तालाब किनारे का मठ अब पहले से भी भव्य मंदिर में बदल चुका है और तालाब... ?

पूजा-स्थल तो हमने बचा लिये, जलस्रोत कौन बचायेगा ?

•••

एक आदिवासी राजा ने सबके उपयोग के लिए मानसरोवर को बाँधा था और समझदारी का दंभ पाले हमने अपने निजी इस्तेमाल के लिए तालाब को खेतों में बदल दिया। ग्यारसपुर में पानी का संकट अब स्थायी है। वहाँ की जमीन में बहुत नीचे तक पानी है ही नहीं। गर्मियों में गाँव के कुओं में खारा या मीठा कैसा भी पानी नहीं बचता। नल–जल–योजना वालों ने तीन किलोमीटर दूर औलींजा गाँव से पाइप बिछा दिये हैं, पर उनके कनेक्शन उन्हीं घरों में हैं, जो पानी का मोल चुका सकते हैं। गरीब घरों की महिलाएँ दूर खेतों के कुओं से पानी लाती हैं। ऐसे में उनका एक सहारा अमर्रा कुआँ भी है, जो एक तालाब के पेटे में ही है।

अमर्रा नाम का यह तालाब गढ़ पहाड़ पर बने माला देवी के मंदिर के नीचे है। ग्यारसपुर से एक मील दूर लम्बाई में फैले इस पुराने तालाब को

चांदलाबली पहाड़ और गढ़ पहाड़, दोनों के बीच एक पाल डालकर बनाया गया था, जिसकी मरम्मत सन् 1904 में खुद तब के ग्वालियर महाराजा ने अपनी विशेष दिलचस्पी की वजह से करवाई थी। पाल के दक्षिण के नीचे की तरफ बने कुएँ इस तालाब की वजह से हमेशा जल–समृद्ध रहते हैं। तब भी, जब इस तालाब को खाली कर उसमें खेती शुरू हो जाती है। इस तालाब के दूसरी छोर का अमर्रा कुआँ ग्यारसपुर की पश्चिमी निर्धन बस्ती की प्यास बुझाता है। कैसी भी गर्मी हो, उसका ठंडा और मीठा पानी कभी सूखता नहीं है। अमर्रा कुआँ तालाब के पेटे में जो बना हुआ है।

●

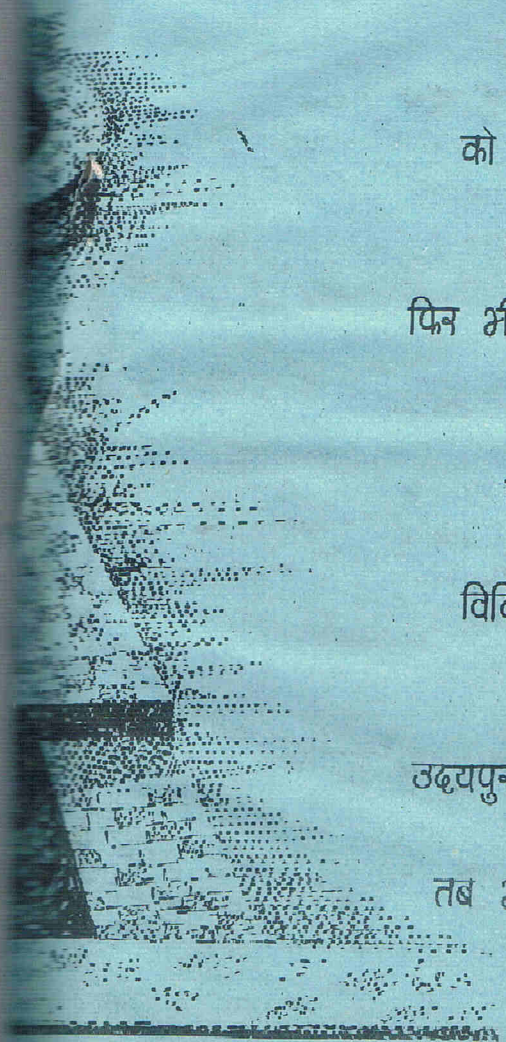

⌘

उस पुरातन काल में विदिशा अंचल
को न तो मरूभूमि की तरह बूँद-बूँद पानी
सहेजना मजबूरी था और न
यहाँ सिंचाई का ही चलन था।
फिर भी ग्रामीण जन गाँव-गाँव बस्ती-बस्ती में
इन्द्र देवता के प्रसाद को अपने
आंचल में सहेजने से चूके नहीं।
इलाके भर में बिखरे सैकडों आबुत-फूटे
तालाब इसके गवाह है।
विदिशा, सिरोंज, लटेरी, कुनवाई ग्यारसपुर,
पठारी,
बड़ोह, घटेरा, और
उदयपुर जैसे सभी पुराने नगर और गाँवों में
अनगिनत तालाब हैं या थे।
तब भी जब बस्ती भले ही नदी के किनारे
क्यों न बसी हो।

⌘⌘

सिरोंज तालाब– कभी स्टेडियम तो कभी हैलीपैड

सिरोंज के दक्षिण की ओर बने इस तालाब के निर्माता का कोई अता–पता नहीं है। सत्रहवीं सदी में सिरोंज आगरा से सूरत बंदरगाह जाने वाले रास्ते का प्रमुख पड़ाव था। अबुल फजल ने सिरोंज का व्यापारिक शहर के रूप में जिक्र किया है। सिरोंजवासियों के अलावा, शायद गुजरने वाले काफिलों और डेरा डालने वाले बंजारों के टांडों की ज़रूरत पूरी करने के लिए सैकड़ों साल पहले यह तालाब बनवाया गया था। तालाब का इतिहास बताने वाला तो अब सिरोंज में कोई नहीं है, लेकिन तालाब की ज़रूरत पर बोलने वाले अनगिनत हैं और हर एक के मन में अफसोस है कि आज तालाब को नाहक ही दो हिस्सों में बाँट दिया गया है।

सिरोंज के नदी तल के कुएँ

सिरोंज के नदी तल के कुओं को समझने के लिये सिरोंज के अतीत में झाँकना जरूरी है। शेरशाह सूरी के ज़माने से ही प्रशासकीय केन्द्र रहा सिरोंज, उत्तर भारत की मंडियों का माल सूरत बन्दरगाह तक ले जाने वाले मार्ग का प्रमुख पड़ाव था। सिरोंज में कागज निर्माण, कपड़े बुनने और उन पर कलात्मक छपाई का काम बड़े पैमाने पर होता था। विदेशी व्यापारी सिरोंज की महीन मलमल और चटख छींट खरीदने के

⇨

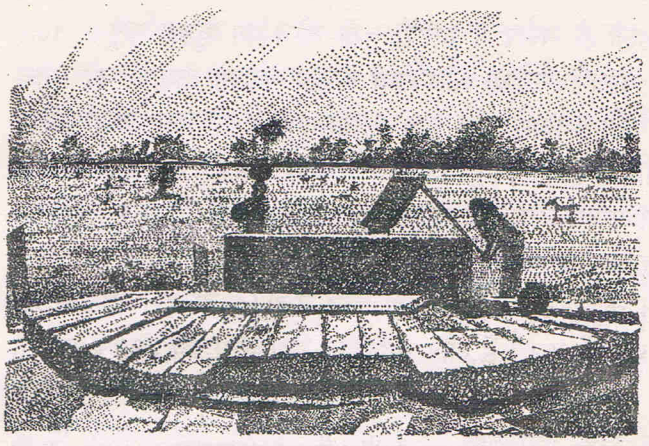

तालाब भले ही सूखा हो
शक्कर कुईया अब भी
पानी देती है।

सन् 1992 में 'सरोवर हमारी धरोहर' योजना बनाने वालों को अपनी इस पुरानी धरोहर की चिन्ता हुई। अक़्ल का ज्यादा इस्तेमाल किये बिना इंजीनियरों ने तालाब के बीच में पाल डालकर इसको दो हिस्सों में बाँट दिया। तालाब के निचले उत्तर–पूर्वी हिस्से में तो पहले से ही पाल थी। दक्षिण में पहाड़ियों से उतरे पानी का जो प्राकृतिक बहाव था, उसके रास्ते में अब पाल डाल दी गई है। तकनीकी कुशलता ऐसी कि पाल के दोनों छोर आजाद हैं। अब इस पाल जैसी चीज ने इन पहाड़ियों से बहकर तालाब में आने वाले पानी के रास्ते में रुकावट पैदा कर दी है।

लिये सिरोंज में स्थाई रूप से डेरा डाले रहते थे। जाहिर है वहाँ मीठे पानी की भारी ज़रूरत रहती थी और बस्ती के कुओं में सिर्फ खारा पानी ही निकलता था। आज भी सिरोंज पानी के मामले में श्रापग्रस्त माना जाता है।

लेकिन सिरोंजवासी शाप से निराश नहीं हुये थे। उनकी कोशिशें लगातार जारी रहीं। तालाब बना कर उसके किनारे कुएँ खोद कर मीठे पानी के स्रोत तो बनाये ही गये, बरसाती नदी कैथन के तल में दर्ज़नों पक्के और खुबसूरत कुएँ-कुईयाँ खोद कर भी पेयजल का पक्का इन्तज़ाम किया गया। शहर के उत्तर से होकर बहने वाली छोटी सी कैथन नदी सिरोंज से कुछ ही किलो मीटर ऊपर तरवरिया ताल से निकलती है। एक तो हज़ारों व्यापारिक भारवाहक पशुओं की रैलमपेल, उस पर निर्यात किये जाने वाले कपड़ों की रंगाई और धुलाई। ऐसे में छोटी सी बरसाती नदी से बारह महीनों भरपूर ⇨

यह पाल पहली ही नजर में हमारी नयी सोच का फूहड़ नमूना नजर आता है। सरकार ने पैसा दिया था और खर्च करना था सो तालाब को गहरा करने के बजाय यह पाल बनवाई, एक घाट बनवाया और जो पैसा बचा, उससे वृक्षारोपण करवा दिया। नगरपालिका भी पीछे नहीं रही, अब तो उसने भी तालाब की पुरानी चौड़ी और मजबूत पाल पर नया बस स्टेण्ड बना दिया है। तालाब पर अब हर समय मुसाफिरों की रेलमपेल रहती है और तालाब का घाट मुसाफिरों को सुलभ कॉम्प्लेक्स की कमी महसूस नहीं होने देता। नेता इस तालाब का उपयोग हेलिपैड के रूप में करते हैं और नौजवान स्टेडियम की तरह। अब तो

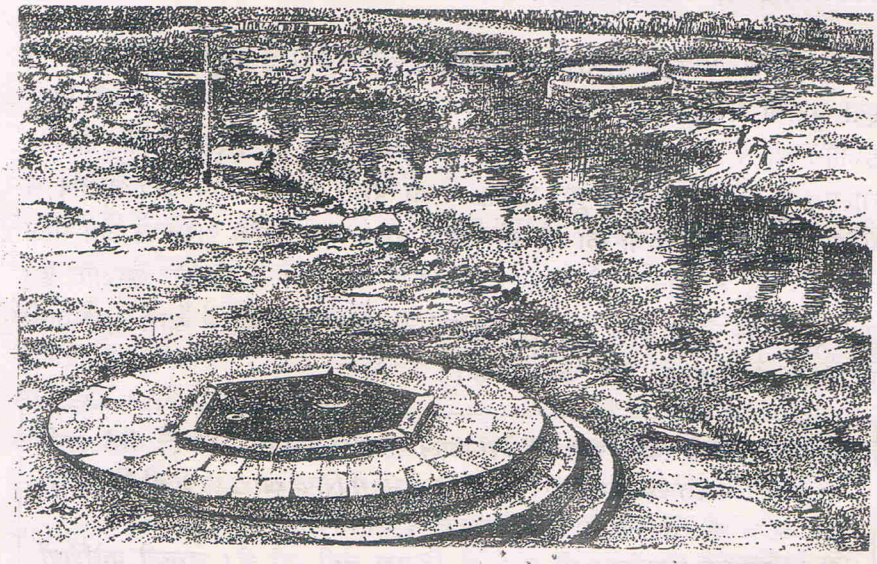

पच-कुइयाँ, सिरोंज।

दिन में ही नहीं, रात में भी रोशनी का इन्तजाम करके वहाँ किक्रेट होता रहता है। नगरपालिका सिरोंज, भोपाल तालाब की तरह अपने इस तालाब के उत्तरी छोर पर घूरा भी डलवा रही है, ताकि धीरे–धीरे तालाब से ज़मीन निकाली जाये और उससे व्यावसायिक लाभ कमाया जाये। और हाँ, तालाब के ऊपर की तरफ जो 'पाल' जैसी चीज डाल दी गई है, उसके परली तरफ की ज़मीन पर अब चैन से खेती हो रही है।

सिरोंज के पढ़े–लिखे नये नगर–निर्माताओं को इस तालाब की बस यही उपयोगिता समझ आई है, लेकिन जिन्होंने सैकड़ों साल पहले तालाब बनवाया था, उन्होंने कैथन नदी के पूर्वी किनारे पर बसे सिरोंज को उस नाले से मुक्ति दिलाई थी, जो दक्षिण से बहता हुआ कैथन नदी में मिलता था। आज का सिरोंज का बाज़ार कभी नाला ही था। फिर वही क्यों, हादीपुर काहरा बाज़ार, बड़ा बाज़ार और तलैया सभी उस पुराने नाले की जगह बसे हैं। तब के नगर निर्माताओं ने यह तालाब बनाकर सिरोंज को सिर्फ उस नाले से ही निजात नहीं दिलाई थी, बल्कि व्यापारिक माल ढोने वाले बैलों, ऊँटों, गधों, खच्चरों और घोड़ों के लिये भी पानी का इन्तजाम कर दिया था। मुसाफिरों के साथ शहर की दक्षिणी आबादी भी नहाने–धोने के लिए इसी तालाब पर निर्भर थी, लेकिन सबसे बड़ा काम उन्होंने मीठे पानी का पुख्ता इन्तजाम करने का किया था, जो उस समय बड़ी कठिन बात थी।

सिरोंज शहर के अन्दर के कुओं का पानी खारा और अनुपयोगी था, इसलिए इस पुरानी समृद्ध व्यापारिक नगरी में पानी का रोना हमेशा बना रहता था। इस समस्या से निपटने के लिए पुराने लोगों ने तालाब के पाल पर या सट कर कुएँ खुदवाये थे। शक्कर कुइया, मंडी का कुआँ, हमाम कुआँ और हिजड़ों का कुआँ, जैसे दर्जन भर कुएँ–कुईएँ ही

साफ़ और शुद्ध पेयजल प्राप्त करने के लिये सिरोंज के रहवासियों ने अनूठा तरीका ढूँढा। नदी में एक, दो, दस नहीं, दो दर्जन से ज़्यादा खूबसूरत और मजबूत कुएँ-कुइयाँ बनाये गये। पेयजल के इन स्रोतों के निर्माण का सिलसिला इस सदी के आरम्भ होने तक लगातार चलता रहा।

बीच नदी में या फिर बिल्कुल किनारे पर बनाये गये इन कुओं में आज भी मीठा पानी लबालब भरा रहता है। बरसात में जब बाढ़ आती है तो ये कुएँ-कुइयाँ नदी में समा जाते हैं और बाद में फिर जैसे-जैसे नदी का पानी कम होता जाता है और जल संकट बढ़ता है तो ये जल स्रोत अपने पेट में अगाध जल राशि लिये एक-एक करके उबरते जाते हैं। इनमें से पानी लेने के लिये सिर्फ चन्द हाथ की रस्सी की ही जरूरत होती है।

जहाँ पाइप लाइन नहीं पहुँची है, नदी पार की ऐसी बस्तियों में अभी भी इन कुएँ-कुइयों का ही सहारा है। आज भी किनारे की बस्तियों के लोग कैथन नदी की रेत फलाँगते हुए, घुटने-घुटने पानी में चल कर इन जल ⇨

स्रोतों तक पहुँचते हैं और रीते नहीं लौटते। कुछ बरस पहले जब शहर में पाइप लाइन नहीं बिछी थी और गर्मियों में घोर जल संकट हो जाता था तो नदी के तल में बनी पच-कुइयों पर डीजल पम्प रख कर टैंकरों से शहर में पानी वितरित किया जाता था।

वैसे तो नदी में मीठे पानी के कई जल स्रोत हैं पर एक ही स्थान पर बनी पांच कुइयों के नाम पर जगह का नाम ही पच-कुइयाँ पड़ गया है। लेकिन ये कुइयें इसी जगह पांच से बढ़ करीब आठ हो गई थीं, सफाई से तराशे गये काले पत्थर और देशी चूने से बेहद खूबसूरत तरीके से बनाई गई इन कुइयों में दो लगभग नष्ट हो गई हैं और दो में मिट्टी भर गई है। बाकी के चार कुएँ-कुईयों की सफाई पर धेला भी खर्च नहीं किया जाता पर वे आज भी सूखे गलों को तर करने का काम कर रही हैं। लेकिन उनके भी बुरे दिन आ गये लगते हैं। जून 96, में शहर में जब उल्टी-दस्त की बीमारी फैली तो प्रशासन ने अपनी कमजोरी छिपाने के लिये पच-कुईयों के पानी को बीमारी का जिम्मेदार ठहरा दिया। प्रशासन अब उन्हें बन्द करने की जुगत में है। पच-कुइयाँ यदि बोल पातीं तो जरूर पूछतीं कि बीमारी फैलाने का इल्ज़ाम लगाने वालों ने उनकी सफाई और देख भाल के लिये आज तक किया क्या है।

सिरोंज में जहाँ घर-घर खारे पानी के कुएँ हैं, तालाब किनारे और नदी पेटे के इन अमृत कुन्डों ने ही सदियों से इस व्यापारिक शहर को तृप्त रखा है। वे आज भी अपना काम किये जा रहे हैं। नई नल-जल योजना अभी भी पूरे शहर को पानी नहीं पिला पाती और शहर के भीतरी हिस्से को जितना भी पानी मिलता है वह तालाब किनारे के उस पुराने हमाम कुएँ पर लगाये गये पम्प की मदद से ही मिलता है जिसे प्रशासन ने बर्षों से साफ नहीं कराया है। अब प्रशासन मीठा पानी प्राप्त करने के लिए पुरानी कारीगरी की अद्भुत मिसाल पच-कुइयों को संरक्षण देने की जगह बन्द करने पर उतारू है।

◆◆◆

वे मीठे पानी के स्रोत थे, जिनसे सिरोंज की दक्षिणी बस्ती को पेयजल मिलता था। तालाब के पाल पर बनी शक्कर कुइया का नाम शक्कर कुइया ही इसलिए पड़ा कि उसका पानी शक्कर की तरह मीठा था। कुइया अब भी है, साफ और स्वच्छ पानी से भरपूर। अब तो उस पर हैण्ड पम्प भी लगा दिया गया है।

जब तालाब पूरा भर जाता था, तो मंडी वाले कुएँ का पानी मुँडेर से बस पाँच–सात हाथ नीचे रह जाता था। बाद में, जैसे–जैसे तालाब का पानी

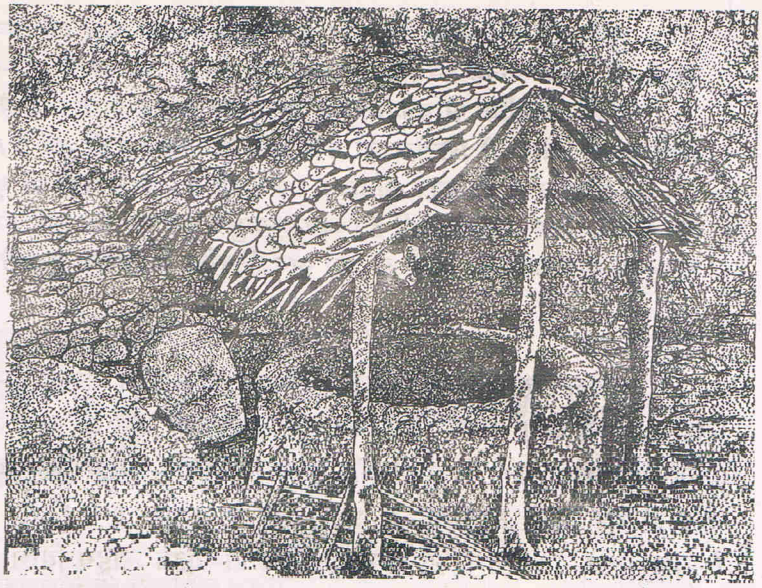

चूनगरों का देसी भट्ठा।

कम होता जाता, कुएँ का पानी उतरता जाता। ऐसा ही था, हिजड़ों का कुआँ। उसे हिजड़ों ने बनवाया था, इसलिए उसका नाम हिजड़ों का कुआँ पड़ा या कोई और वजह थी, इस नाम की, कह पाना मुश्किल है। फिर भी, उसके मीठे पानी का इस्तेमाल सभी करते थे।

चूनगर कहाँ गये ?

चूनगरों के बगैर सिरोंज के जल प्रबन्ध की कथा अधूरी है। सिरोंज और आसपास के कुएँ-बावड़ियों इमारतों के लिए चूनगर सिरोंज में ही चूना पकाते थे। चूनगर अपने हुनर के दम पर समाज में प्रतिष्ठित भी थे और खुशहाल भी।

सिरोंज का रानापुर, कभी पूरा चूनगरों का ही मोहल्ला था। चूनगर अलीगंज, करिया, करीमाबाद, कचनारिया, और नारायणपुर की खदानों से चूना पत्थर लाते और फिर भट्टे में पहले लकड़ी, फिर चूना-कंकड़, फिर लकड़ी और फिर चूना-कंकड की तह पर तह जमाते हुए ऊपर से पीली मिट्टी डाल कर भट्टा सुलगा देते। कुछ ही दिनों में चूना तैयार हो जाता था।

⇨

अनसुना मत करो इस कहानी को

चूने की माँग बहुत थी और चूनगर कम। सो चूने की कमी बनी ही रहती थी। यही वजह थी कि चूनगरों की समाज में खासी पूछ-परख थी।

देसी तकनीक से पकाया यह चूना अब चलन में कम ही है। फिर भी अभी पुराने लोगों में सिरोंज के पके चूने की कदर बची हुई है।

सिरोंज में रानापुर मोहल्ला आज भी है। परंतु वहाँ के चूनगरों का अब पहले जैसा सम्मान नहीं है। अब रानापुर चूनगरों का नहीं हरिजनों का मोहल्ला कहलाता है, जहाँ के मर्द अब सिरोंज में रिक्शे चलाते हैं।

◆◆◆

मुस्लिम शासकों की बस्ती की खास चीज हुआ करती थी– हमाम, वह सिरोंज में भी था। उसके पानी की पूर्ति हमाम के कुएँ के नाम से सिरोंज में आज भी मशहूर कुएँ से होती थी। हमाम तो मिट–मिटा गया, पर तालाब से कुछ ही दूर कुआँ आज भी है, अपने पेट में भरपूर पानी लिये। जब सिरोंज में नल–जल–योजना वालों ने कैथन बाँध से पाइप लाइन बिछा दी, तो शहर के कुछ हिस्सों में पानी कम दबाव से आने की शिकायत मिली। नल–जल योजना वालों को दूर की सूझी और उन्होंने हमाम कुएँ पर मोटर बैठा कर पाइप लाईन जोड़ दी। इस पुराने कुएँ की मदद से सिरोंजवालों को आज भी राहत मिल रही है।

●

अब तो बस यादों में ही बचे हैं उदयपुर के तालाब

जनश्रुति के मुताबिक उदयपुर में कभी बावन कुएँ, छप्पन बावड़ियाँ और साढ़े बारह तालाब थे। सिंचाई के लिए गाँव में अब कुएँ तो और खुद गये हैं, पर बावड़ियाँ नष्ट होती जा रही हैं और तालाब ? वे तो सिर्फ पुराने लोगों की यादों में ही बचे हैं। उदयपुर के अवशेष 1966 हैक्टेयर में बिखरे हुए हैं। जाहिर है, उदयपुर की उस पुरानी और विशाल बस्ती में पानी का पुख्ता इन्तजाम भी होगा। ग्यारहवीं सदी में राजा उदयादित्य परमार ने खूबसूरत उदयेश्वर मन्दिर के साथ ही 'उदय समुद्र' नामक तालाब भी बनवाया था। अब तो सिर्फ मन्दिर ही बचा है, उदय समुद्र का कोई अता–पता नहीं है।

उदयपुर–वासी कहानी सुनाते हैं– कि बाहर से आई नटनी ने राजा के सामने खेल दिखाते समय गर्वोक्ति की, कि वह विशाल उदय समुद्र को कच्चे सूत पर चलकर पार कर सकती है। राजा ने यह काम असम्भव बताया और कहा कि यदि नटनी ने यह करतब कर दिखाया तो अपना आधा राज्य उसे दे देंगे वरना नटनी को राजा की आजीवन चाकरी करनी होगी। नटनी ने राजा की शर्त मंजूर कर ली। उदय समुद्र के आरपार कच्चा सूत बाँध दिया गया, नटनी ने भी मंत्रों से सबके हथियार बाँध दिये और सूत पर चलती हुई तालाब

पार करने लगी। पर नटनी राँपी बाँधना भूल गई थी। जब वह तालाब पार करने की शर्त जीतने को ही थी तो राजा ने चर्मकारों को इज़्ज़त की दुहाई दी और उन्होंने चमड़ा काटने की राँपी से सूत काट दिया। नटनी तालाब में गिरी और डूब कर मर गई।

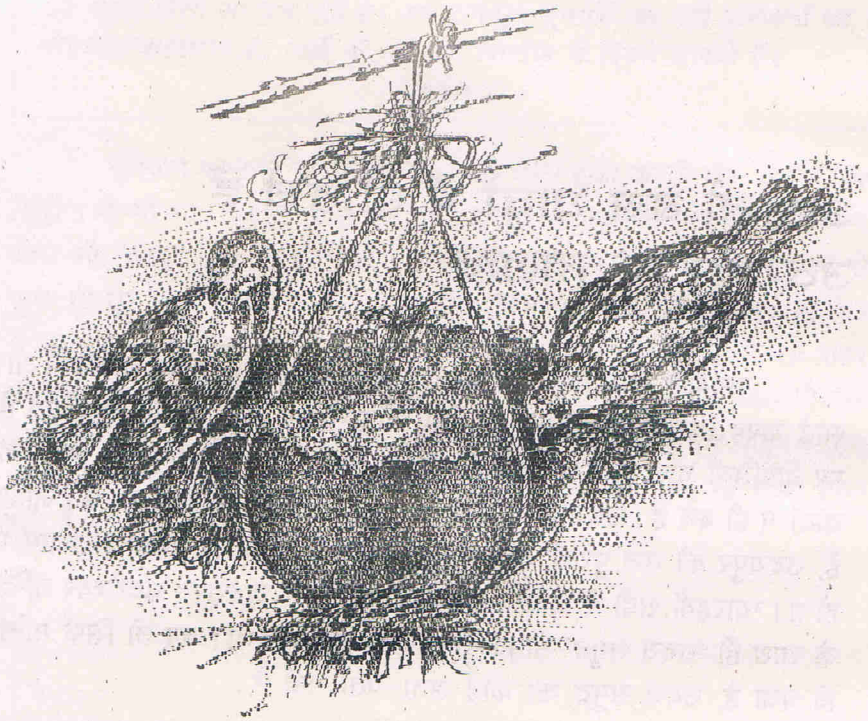

पंछिओं को पानी,
अब गुजरे ज़माने
की बात है।

नटनी ने राँपी के साथ–साथ ज़मीन के भूखे लोगों की कुदालें भी नहीं बांधी थीं, तभी तो कुदालें चलीं और उदय समुद्र मार डाला गया। बुज़ुर्ग गाँववालों को उदय–समुद्र की ही नहीं, उन साढ़े बारह तालाबों की याद अभी भी है, जिनमें चंद सालों पहले तक पुरैन फूलती थी और हज़ारों की संख्या में ताल चिरैयें डेरा डाले रहती थीं।

अनसुना मत करो
इस कहानी को

उनकी यादों में अब भी भुजरया तला, लडेंरा तला, मड़ातला, रेकड़ा तला, वमनैया ताल, कारी तलाई, बेल तला, हरैला तला, लमडोरा तला, नओ

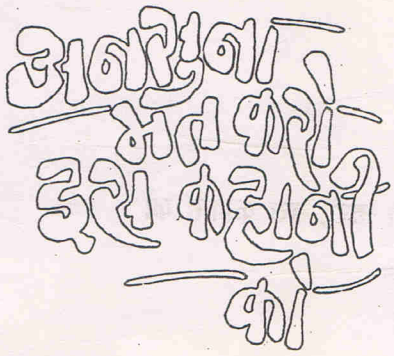

अनिल यादव

रामकृष्ण प्रकाशन
सावित्री सदन, तिलक चौक
विदिशा (म. प्र.) 464 001

तला, गुचरैया तला और मकड़ी तलैया बसे हुए हैं। इनमें से आखिरी पाँच की पालों पर तो चंद दिनों पहले तक सीढ़ियाँ बची हुई थीं।

उदयपुर के ये सभी बारह तालाब शुरू से ही अलग–अलग थे या वक़्त के थपेड़े खाकर उदय–समुद्र ही बारह हिस्सों में बँट गया था ? इस सवाल का जवाब देने वाला आज कोई नहीं बचा है। जब तक ये तालाब थे, उनके गिर्द बने हुए कुएँ–बावड़ियाँ ज़िन्दा थीं। गाँव में पानी का कोई संकट नहीं था, पर आज बावन कुएँ, छप्पन बावड़ियाँ और साढ़े बारह तालाबों का उदयपुर, जिले के सर्वाधिक प्यासे गाँवों में से एक है, जहाँ पानी के मुकाबले शराब ज़्यादा आसानी से मिल जाती है।

चंद साल पहले पानी के लिए जब हाय–हाय शुरू हुई, तो नल– जल योजना वालों ने केवटन नदी से पाइप लाइन बिछा दी। पाइप लाइन बार–बार फूट जाने पर गाँववालों ने मिस्त्री की माँग की। साल–दो–साल में जब तक मिस्त्री की व्यवस्था की गई, तब तक बिजली का संकट शुरू हो गया और जब गाँववालों के दबाव पर ट्रांसफारमर रखा गया, तो अब पिछले पाँच–सात सालों से केवटन जनवरी में ही सूख जाती है । उदयपुर फिर प्यासा का प्यासा है।

चन्द दिनों की ही ज़िन्दगी बाकी है

बरमढ़ी पोतला, दुसेहरी, शेखपुर, दैलाखेडी, बैहलौट, सौंसेरा, जैसे दूर–पास के गाँव में गर्मियों में जब किसी की गाय–भैंस खो जाती है, तो वह ज़्यादा परेशान नहीं होता, क्योंकि जानता है कि ढोर कहाँ मिलेगा। चल देता है, गुलाबरी की तरफ। मई–जून की गर्मी में जब आसपास चरने को कुछ नहीं बचता, पानी के सारे ठिये सूख जाते हैं, तो हैरान–परेशान जानवर गुलाबरी के तालाब की शरण में पहुँच जाता है। तालाब में पीने को पानी भी खूब रहता है। फिर तेज चिलचिलाती दुफैरिया में तालाब के किनारे के घने बड़, पीपल, इमली, महुओं का छाँहरा तो है ही। गर्मियों–भर गुलाबरी के तालाब पर ढोर–डंगरों का मेला भरा रहता है। इनमें पचासों जानवर ऐसे भी होते हैं, जिनका कोई धनी–धोरी नहीं होता।

आसपास के पचासों गाँवों में गुलाबरी का तालाब अपनी तरह का अकेला है। करीब साठ बीघे के इस

खुड़याब से बने थे तालाब

छप्पन के काल के किस्से आज भी लोग सुनाते मिल जाते हैं। तब तीन वर्ष तक बारिश बहुत कम हुई थी। छप्पन मतलब कि संवत् 1956, तब गरीब जनता को पलायन से रोकने और रोजगार से लगाने के लिए तत्कालीन रियासत ने बड़े पैमाने पर सन् 1903 से 1916 तक जिले में तालाबों के निर्माण और सुधार का सिलसिला चलाया था।

⇨

तालाब में पाल के अंदर की तरफ पत्थर की मोटी–मोटी शिलाएँ लगाई गई हैं। गाँव में किसी को नहीं पता कि तालाब कब, किसने और क्यों बनवाया था! वंश–परम्परा का हिसाब–किताब रखने वाले जागा या पटिये जब कभी गाँव आते हैं, तो बताते हैं कि तालाब, इसके किनारे बना मंदिर और बैठक को किसी गुलाबसिंह ने बनवाया था। उसी के नाम पर गाँव का नाम गुलाबरी पड़ा। यह तालाब उसने इतना गहरा खुदवाया था कि तालाब में पानी नीचे से झिर आया था। पूरी अठारह सीढ़ियाँ थीं तालाब में, पर आज सारी कीचड़ में डूब गई हैं।

करीब नब्बे साल पहले इस तालाब की फिर से मरम्मत कराई गई थी। तब रियासत ने 'कुड़याब' से तालाब ठीक कराया था। 'कुड़याब' यानी कि

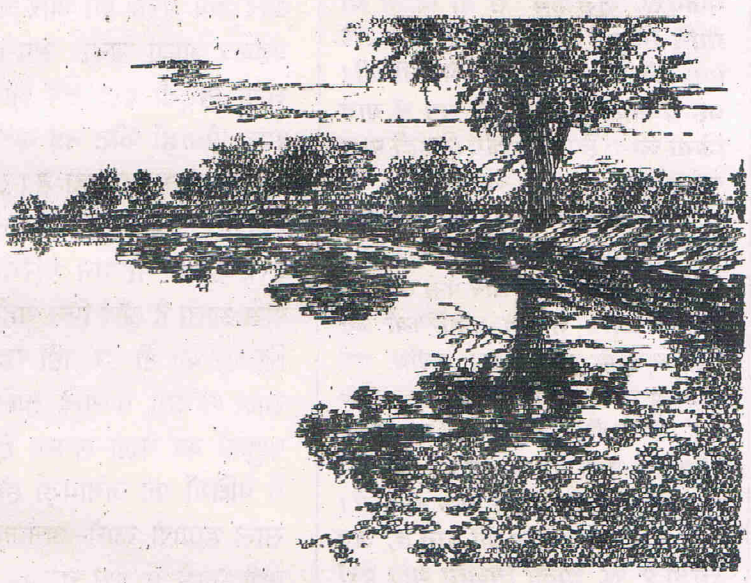

पुरता ही जा रहा है, गुलाबरी तालाब।

कौड़ियों के बदले मजदूरी। बताते हैं, जब अकाल पड़ा था, उस बुरे वक़्त में उन कौड़ियों ने गुलाबरी और आसपास के कई गरीब–गुरबों को सहारा दिया था।

फिर देश आजाद हो गया। जमींदारी खत्म हुई, तालाब भोईयों के नाम हो गया। कुछ दिन सब ठीक–ठाक चला, फिर गाँववालों में झगड़े शुरू हो गए। हालात यहाँ तक बिगड़े कि तालाब को लेकर कई बार लट्ठ चले।

गाँव में सिंचाई का कोई साधन नहीं है। फिर भी, इस तालाब से न

उस समय विदिशा और गंज बासौदा तहसीलों में कुल 54 तालाबों पर काम कराया गया था। इनमें से 7 बिलकुल नये और बाकी 47 बहुत पुराने तालाब थे। इनके अलावा, जिले में सैकड़ों दूसरे पुराने तालाब और भी थे, जो पता नहीं कब से जनता और पशुधन को पानी उपलब्ध कराते रहे थे।

सन् 1903 से 1916 के बीच तालाबों पर जो काम हुआ, उसमें मजदूरी 'कुड़याब' से दी जाती थी यानि मिट्टी की हर खेप के बदले एक कौड़ी मजदूर को मिलती थी। यह तरीका कुड़याब के रूप में याद किया जाता है। पाँच खेप मिट्टी पाल पर डालने पर पाँच कौड़ियाँ मिलती थीं। यह इकाई एक गण्डा कहलाती थी। ऐसे बारह गण्डे मिलकर एक पैसा बनता था। तब चार पैसे की एक इकन्नी और सोलह इकन्नियों का एक रुपया होता था। गरीब वर्ग तालाब के काम में लगकर हर रोज 2-3 पैसे की मजदूरी कर लेता था और तब से ही यह कहावत है कि भैया दो पैसे कमाकर बच्चे पाल लेने दो।

यह उस दौर की बात है, जब सोना 9 रु. तोला मिलता था। ऐसे में पुरा घटेरा जैसे तालाब के निर्माण और सुधार पर एक लाख रु. से भी ज़्यादा राशि खर्च की गई थी।

***

तो कोई खुद सिंचाई करता है, न दूसरे को करने देता है। जब बिना सिंचाई के ही तालाब लगभग सूख चला है, तो तालाब को बिल्कुल रीता करके क्या ढोर–डंगरों को प्यासा मारना है ? बस यही सोच ग्रामीणों को सिंचाई करने से रोके हुए है।

पहले कभी इस इलाके में जंगल था, फिर धीरे–धीरे खेत बने और अब पूरब की ओर से खेतों से बहकर आया पानी अपने साथ ढेर सारी मिट्टी बहा कर लाता है। हर साल सैकड़ों फीट नई ज़मीन तालाब से निकलती आ रही है। तालाब अब एक छिछली झील में बदल गया है। ऐसी झील मेहमान परिंदों को खूब रास आती है और फिर यहाँ तो उनके शिकार का भी डर नहीं रहता, सो हर साल गर्मियों में यदि तालाब किनारे पशुओं का मेला लगता है, तो जाड़े में पक्षियों का जमावड़ा होता है। हर साल हज़ारों जाने–अनजाने परदेशी पक्षी जाड़े में इस तालाब को अपना ठिकाना बनाते है।

गुलाबरी और दूर–पास के दर्जनों गाँवों के मूक जानवरों और हज़ारों मील फलाँग कर आये परदेशी पक्षियों के लिए गुलाबरी का तालाब सच्ची–मुच्ची का स्वर्ग है।

पानी तो है पर कब तक

लटेरी में पानी का कोई स्थायी व समृद्ध स्रोत नहीं था। शायद इसलिए इस तालाब की जरूरत कभी पड़ी होगी। यूं इस बस्ती में कई पुराने कुएँ–बावड़ियाँ हैं, लेकिन गर्मियों में उनका पानी पीने को ही कम पड़ता है। नहाने–धोने और पशुधन को पानी उपलब्ध कराने के लिए लटेरी–वासी हमेशा से इस तालाब पर निर्भर रहे हैं और आज भी हैं।

तालाब में पानी किसी नदी–नाले से नहीं आता, बस बारिश के दिनों में पूरब और उत्तर की ओर की बस्ती और खेतों का पानी बहता हुआ इस तालाब

लटेरी तालाब

तक पहुँचता है। कुछ साल पहले तालाब के पूर्वी हिस्से में उत्तर से दक्षिण दिशा में सड़क डाल दी गई है, जिससे पानी अब दक्षिणी पाल के किनारे से बहकर बेकार चला जाता है। तालाब अब पूरा भरता नहीं है, फिर यह उथला भी होता जा रहा है। आज भी आबादी का एक बड़ा हिस्सा हनुमान ताल पर ही नहाने धोने जाता है और इस निपट ग्रामीण बस्ती में पशुधन को तो बस तालाब का ही सहारा है।

हनुमान ताल फिलहाल लटेरी नगर पंचायत की देखरेख में है और जब जिला मुख्यालय विदिशा की नगरपालिका ने अपने नीमताल, चौपड़ा, तलैया और हाजीबली के तालाबों को अस्वाभाविक विकास की भेंट चढ़ा दिया है, तब इस छोटी–सी नगर पंचायत ने काफी हद तक अपने तालाब को बचाये ही नहीं रखा, बल्कि उस पर साफ–सुथरे घाट बनवा कर आसपास घना वृक्षारोपण भी करवाया है।

लटेरी में पीने के पानी की हमेशा किल्लत रहती है। अब तो नल–जल–योजना की वजह से पानी की हाय–हाय कुछ कम हो गई है। फिर भी, जब कभी किसी वजह से पानी की सप्लाई नहीं होती है, तो इस तालाब की पाल पर बने हनुमान मंदिर के कुएँ पर भारी भीड़ उमड़ती है। उस कुएँ में पीने के मीठे पानी का अकूत भण्डार जो है। यह कुआँ घनघोर गर्मियों में भी अपने ठण्डे पानी से लोगों की प्यास बुझाने में सक्षम बना रहता है। ऐसा ही एक बारहमासी कुआँ, तालाब के उत्तर पूर्वी किनारे पर भी है। फिर, बरबटपुरा की कुइयाँ तो तालाब किनारे हैं ही, जिनमें चार

बरबटपुरा की कुइयाँ

बरबट का मतलब होता है, ज़बरदस्ती। लटेरी के इसी नाम से बसे अनधिकृत मोहल्ले में नल-जल से पाइप बिछाने में बड़ी कंजूसी दिखाई गई। यह मोहल्ला लटेरी के हनुमान ताल के उत्तर-पूर्वी छोर पर तालाब के एकदम किनारे बसा है। प्रकृति ने इस मोहल्ले में बड़ी उदारता दिखाई है।

कई शहरों में नल-जल योजना के नलों से तुलतुलाती पतली धार से पानी के लिए जितना गहरा गड्ढा खोदना पड़ता है, बस उतनी गहराई से पाँच हाथ की रस्सी से लोग जब जितना ज़रूरत हो पानी खींच लेते हैं। चार फीट चौड़ी और इतनी ही लम्बी इन पक्की कुइयों की गहराई कुल जमा पन्द्रह फीट होती है, जिनमें आठ-दस फीट पानी तो बना ही रहता है। बारिश में जब सरकारी नलों से गंदा और मटमैला पानी आता है,

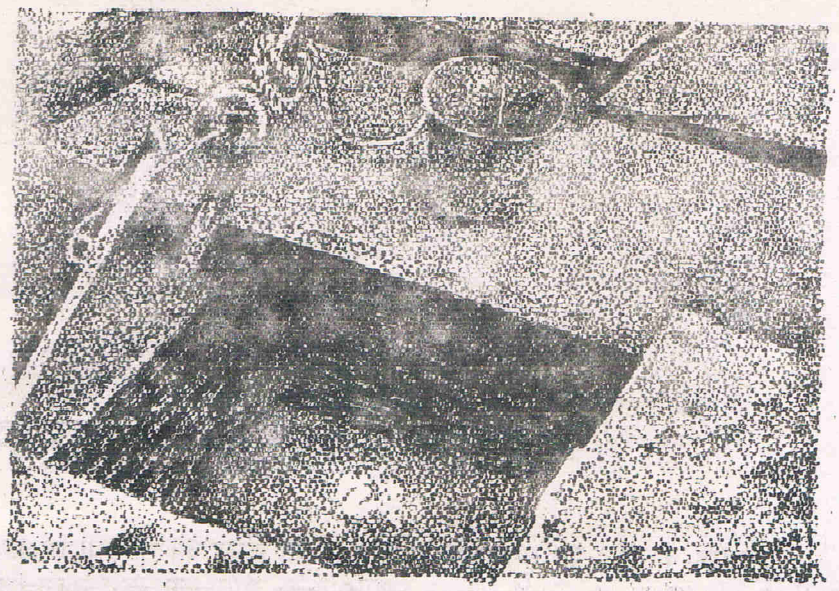

बरवटपुरा की कुइयाँ।

हाथ की गहराई पर ही पानी मिलता है।

कुइयों का पानी साफ और निर्मल रहता है। खराबी है, तो बस यह कि पानी बहुत मीठा नहीं है और लटेरी जैसी बस्ती में जहाँ मकान बनाने के लिए कभी-कभी नालियों के पानी का उपयोग करना पड़ता है, इन कुइयों का महत्त्व लटेरी के लोग ही समझ सकते हैं।

+++

हनुमान ताल इलाके के उन सबसे अच्छे निस्तारी तालाबों में एक है, जो अब तक किसी तरह बचे हुए हैं। शायद इसकी वजह लटेरीवासियों की उस पर अत्याधिक निर्भरता ही है, लेकिन लटेरी और उसके आसपास यह इकलौता तालाब नहीं था। हाल ही तक वहाँ हनुमानताल समेत सात तालाब हुआ करते थे, उनमें से पांच की तो बस अब याद ही बाकी है। धना ताल, दाऊताल, गुरजियाताल, काँकर ताल, और मोतिया ताल तो अभी–अभी लोगों के देखते–ही–देखते खत्म हो गये। बची है, तो छोटी सी गोपी तलाई और वो इसलिए, कि सगड़ा–धगड़ा पहाड़ों से उतरा पानी वहीं सेन और सगड़ नदी बन कर बहता है।

●

हैदरगढ़ –भूला हुआ सबक

पहाड़ के नीचे का मृगननाथ तालाब हो या ऊपर का मोतिया तालाब, दोनों ही इस अँचल के दूसरे तालाबों की ही तरह हैं। यहाँ कुछ अद्‌भुत है तो हैदरगढ़ का पुराना जल–प्रबन्ध। इसमें जमीन से पानी चुराने की उस्तादी की जगह बादलों की उदारता को सहेजने की सूझ है। राजस्थान में टाँकों के रूप में पाई जाने वाली यह व्यवस्था इस अँचल में अनोखी और अकेली ही है।

आज जहाँ हैदरगढ़ बस्ती है उसके ठीक ऊपर बना है 'हैदरगढ़ का किला'। पैंतीस गाँवों की छोटी–सी रियासत के शासक कभी इसी किले में रहते थे। घने जंगलों के बीच ऊँचे पहाड़ पर बना गौडों का यह किला बाद में नवाब हैदरअली के कब्जे में आ गया। आज कोई भी नहीं है यह बताने वाला कि बीहड़ पहाड़ पर बने किले में पेयजल की यह आदर्श व्यवस्था गौंडों की सूझ थी या नवाब की देन।

किला ऊँचे पहाड़ पर, ऐसी जगह है; जहाँ कुएँ–बावड़ियाँ खोदने की, फिर उनमें पानी निकलने की और फिर गर्मियों में भी न सूखने की कल्पना ही नहीं की जा सकती। जरूरत ने वहाँ आदर्श जलतंत्र विकसित कर दिया है। घने जंगल के बीच एक तालाब बनाया गया, मोतिया तालाब, फिर उससे पाँच फुट चौड़ी नहर सी निकाली गई। गाँववाले उसे 'मोरी' कहते हैं। दो मील जंगल में गुजरने के बाद, 'मोरी' किले के मेहराबयुक्त मुख्य द्वार के कुछ पहले

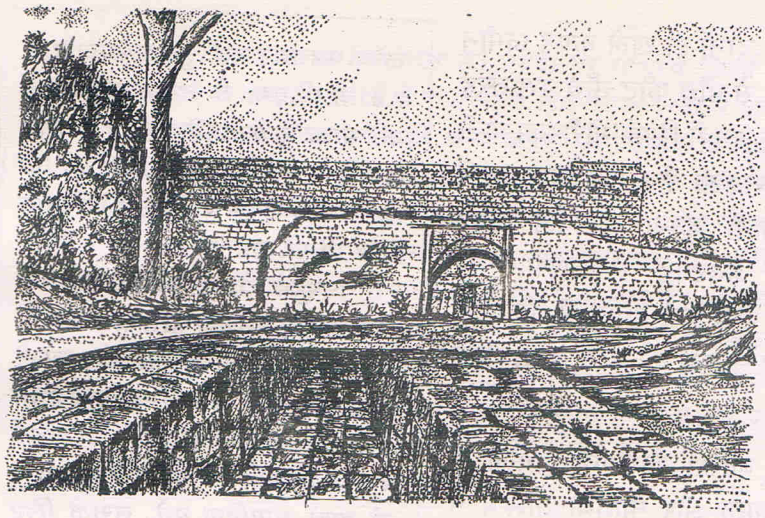

हैदरगढ़,
पुराना जल प्रबन्ध

से ज़मीन के अंदर–ही–अंदर ले जायी गई है। कुछ सौ फुट ज़मीन के अंदर से गुजरने के बाद 'मोरी' कोठी नामक इमारत के नीचे से निकल कर दो हिस्सों में बँट जाती है।

दायें हाथ की मोरी करीब सौ फुट के बाद एक पक्के चौकौर कुण्ड में खुलती है। कुण्ड करीब चालीस फुट चौड़ा और पचास फुट लम्बा है, उसकी गहराई करीब चालीस फुट है। चूने से चिनी पतली–पतली ईंटों से बने इस कुण्ड की मजबूती की गवाही उसमें आज भी भरा हुआ पानी दे रहा है। कुण्ड के एक सिरे पर छोटी सी खूबसूरत मस्जिद है। मस्जिद तो खण्डहर में बदल गई है, लेकिन उसका वह पाट आज भी मौजूद है, जिस पर से 'वजू' के लिए पानी खींचा जाता था।

इससे कुछ ही फासले पर इस कुण्ड से भी सवाया बड़ा दूसरा

बीमारी से बुरा इलाज

हैदरगढ़ के पुराने जल प्रबंध की तुलना में अब तिलाई पानी गाँव का मामला देखें। मंडला जिले के इस गाँव में हेन्ड पम्पों के प्रदूषित पानी से सत्तर से ज़्यादा बच्चे स्थायी तौर पर अपाहिज हो गये हैं।

पहले गाँव में सिर्फ एक कुआँ था, फिर सरकार ने पाँच हेन्ड पम्प खुदवा दिये। नियम और सुविधाएँ होने के बावजूद भूमिगत पानी की कोई ⇨

अनसुना मत करो, इस कहानी को

शोध एवं आलेख
अनिल यादव

सर्वाधिकार : लेखक के आधीन

प्रथम संस्करण : 1997

मूल्य : (पुस्त. सं.) 75/-, (पेपर बैक) 30/-

रेखांकन : सुरेन्द्र भारद्वाज

आवरण एवं रूपांकन : गिरधर उपाध्याय

डी.टी.पी. कम्पोज़िंग : सिल्वर स्कैन कम्प्यूटर सर्विसेज़
तिलक चौक, विदिशा (म.प्र.)

मुद्रक एवं प्रकाशक : **रामकृष्ण प्रकाशन**
सावित्री सदन, तिलक चौक
विदिशा (म.प्र.) 464 001
दूरभाष : 32675

**इस पुस्तक की सामग्री के पुनर्प्रकाशन का स्वागत है,
स्रोत का उल्लेख करेंगे तो अनुग्रह होगा।**

ANSUNA MAT KARO IS KAHANI KO
Investigative report on the disappearing lakes & reservoirs of Vidisha district by ANIL YADAV
ISBN-81-7365-086-1

Lib. Ed. Rs. 75/-
Paper back Ed. Rs. 30/-

कुण्ड है। दोनों ही खुले कुण्ड ज़मीन की सतह से पाँच फीट ऊँचे इस तरह बने हैं कि उन में सिर्फ 'मोरी' का पानी ही जा सकता है। आसपास बहने वाला पानी कुण्ड में नहीं उतर सकता। हैदरगढ़ में अस्सी–नब्बे साल के ऐसे कई बुजुर्ग हैं, जिन्होंने इस जल–प्रबन्ध को काम करते देखा है।

बारिश का पानी जंगलों से बहता आता और मोतिया तालाब में इकट्ठा हो जाता और फिर मोरी के जरिये दो मील का सफर तय करता हुआ इन कुण्डों में उतर जाता। मोरी जैसे–जैसे आगे बढ़ती, सँकरी और गहरी होती जाती है। रास्ते में जगह–जगह मोरी में लगे हुए छोटे छेद वाले पत्थरों में से पानी तो निकल जाता था, लेकिन कचरा अटका ही रह जाता। उस कचरे को निकालने के लिए कारिन्दे तैनात रहते। दो मील तक पानी बहने से पानी की गंदगी नीचे बैठ जाती और पानी निथर जाता। साफ–सुथरे पानी से जब एक कुण्ड पूरा भर जाता, तो उसकी मोरी बंद करके दूसरी खोल दी जाती और जब दौनों कुण्ड पूरे भर जाते, तो तालाब की मोरी का रास्ता बंद कर दिया जाता। बस ! फिर निश्चिंत हो जाते, हैदरगढ़ किले के बाशिन्दे पानी की तरफ से। यही पानी अगली बरसात तक काम आता। बीच में जब कुण्डों में पानी की और जरूरत मालूम होती, तो मोतिया तालाब की मोरी फिर से खोल दी जाती।

इस सदी की शुरूआत में जब रियासतों के आपसी युद्ध कम हो गये और सुरक्षा का अहसास बढ़ गया तो नवाब परिवार नीचे बस्ती में बने अपने महलों में आन बसा। लेकिन तब भी नवाब अयूबअली को पीने के लिए ऊपर के कुण्डों से ही पानी लाया जाता। जंगल, पहाड़ और जड़ी–बूटियों के बीच से बह कर आया पानी ही उन्हें स्वादिष्ट, पाचक और सेहतमंद लगता था।

जाँच-पड़ताल नहीं हुई। पेयजल में 0.5 पी.पी.एम. से ज़्यादा फ्लोराइड की मात्रा नुकसानदेह होती है और इन हैन्ड पम्पों से गाँव वालों को जो पानी मिला उसमें फ्लोराइड की मात्रा 11.5 पी.पी.एम. थी।

बच्चे पहले फ्लोरोसिस के शिकार हुए। उनके दाँत झड़ने लगे, टाँग टेढ़ी हो गईं, घुटनों और जोड़ों में दर्द रहने लगा। जेन-बलगम -सिन्ड्रोम नामक बीमारी ने उनमें स्थायी विकृति ला दी। जिस कारण से बच्चे अपाहिज बने, उसके लिए ⇨

यही हमारा नया जल प्रबन्ध जिम्मेदार है। प्रदेश-भर में पाँच जिलों के एक सौ बासठ गाँवों के पेयजल स्रोतों में फ्लोराइड खतरनाक मात्रा में पाया गया है। अब इन गाँवों के हैन्ड पंपों को बन्द करने पर विचार हो रहा है।

पश्चिम बंगाल के सात जिलों का मामला भी कुछ कम गंभीर नहीं है। वहाँ पानी में आर्सेनिक की खतरनाक मात्रा पाई गई है। इस प्रदेश के मालदह, दक्षिण चौबीस परगना, उत्तर चौबीस परगना, बर्दवान, बदियाँ, मुर्शिदाबाद और हावड़ा में आर्सेनिकयुक्त भूमिगत पानी कहर ढा रहा है। आर्सेनिक से निपटने के लिए पश्चिम बंगाल को साढ़े सात सौ करोड़ रुपये की जरूरत है।

गाँव-गाँव में नारा लिखा गया था कि 'कुओं-बावड़ियों का छोड़ो साथ, हेन्ड पंपों का पकड़ो हाथ।' ज़्यादा सोचे-विचारे बगैर बनाये इस नारे पर किये गये अमल ने अब खतरनाक असर दिखाना शुरु कर दिया है।

◆◆◆

अब इसी हैदरगढ़ में जर्मनी की मदद से पाँच मीटर लम्बी, पाँच मीटर चौड़ी और नौ मीटर ऊँची पानी की टंकी बन रही है। इस टंकी में पैंसठ हज़ार लीटर पानी समाया करेगा। यह पानी बादलों का प्रसाद नहीं होगा, धरती माता का आँचल निचोड़ कर टंकी भरी जायेगी।

ऊपर के कुण्डों और तालाब में बादलों का कितना प्रसाद समाता था, पता नहीं, पर तब के हैदरगढ़ के लिए वह काफी था।

●

अटारी खेजड़ा का रास्ता

अटारी खेजड़ा गाँव के लोग पशुओं को पानी उपलब्ध कराने के मामले में निश्चिंत हैं। चालीस साल तक लड़ी गई लम्बी कानूनी लड़ाई और एक लाख रूपये से भी ज़्यादा खर्च करने के बाद वे (अब 1995 में) उस तालाब के पक्के मालिक बन गये हैं, जिसे आजादी से पहले मूक पशुओं को पानी पिलाने की खातिर जमींदार ने सार्वजनिक घोषित कर दिया था।

पशुओं के लिये पानी की यह लड़ाई और उसके लिये चुकाई गई कीमत उनके लिये मिसाल है जो हर बात के लिये सरकार का मुँह ताकने के आदी हो चुके हैं। अपनी मुश्किलें आसान करने का यह उदाहरण चारों तरफ से निराश हो चुके लोगों में भरोसा जगाता है।

इस किस्से का सिलसिला आज़ादी से पहले शुरू हुआ था। तब देश में जमींदारी का चलन था और श्री बालकृष्ण लद्ढा गाँव के ज़मींदार थे। श्री लद्ढा मारवाड़ के रहने वाले थे अरौर महाराष्ट्र के अमरावती शहर में रह कर अपना व्यापार चलाते थे। उनका अटारी खेजड़ा में आना–जाना कभी साल दो साल में होता था और जमींदारी का सारा कामकाज उनके कारिंदें देखते थे।

सूखे मारवाड़ से निकल कर देश भर में फैल गये दूसरे मारवाड़ी

व्यापारियों की तरह उन्हें भी पानी के मोल का अच्छी तरह पता था। उन दिनों अटारी खेजड़ा में पानी की किल्लत रहती थी। इसी से श्री लढ्ढा हर साल अपने खर्च पर गर्मियों में पशुओं के लिये गाँव में प्याऊ लगवाते थे।

लेकिन यह व्यवस्था पुख्ता नहीं थी। कारिंदें बही–खातों में प्याऊ का खर्च तो बढ़ा–चढ़ा कर डालते थे पर पशुओं को ठीक से पानी मिलता रहे इसकी खास चिन्ता नहीं रखते थे। गाँव वालों ने इस बात की शिकायत श्री लढ्ढा तक पहुँचाई। लगातार शिकायतें मिलने पर दुखी श्री लढ्ढा ने प्याऊ की व्यवस्था तो तोड़ दी पर इसी के साथ अपना निजी तालाब दान–पत्र लिख कर सार्वजनिक कर दिया। तब से वर्षों तक ग्रामीण और पशुधन तालाब का इस्तेमाल करते रहे पर ग्रामीण सरकारी कागज़ों में दान–पत्र पर अमल कराने से चूक गये।

फिर आज़ादी आई, पहले राजे–रजबाड़े खत्म हुये, फिर ज़मींदारियाँ टूटी, अटारी खेजड़ा में भी नई बयार बही, और जो जोते सो खेत उसी का के नारे का असर बढ़ा। हवा का रुख भांप कर बालकृष्ण लढ्ढा एक दिन अचानक अमरावती से आये और तुरत–फुरत में अपनी ज़मीन–ज़ायदाद मय घर–घूरे के बेच गये।

बेचते वक़्त ज़ल्दबाजी में न श्री लढ्ढा ने देखा और ना ही गाँव वालों को पता चला कि ज़मीन –ज़ायदाद के साथ सार्वजनिक तालाब भी बिक गया है। जब नये मालिक ज़मीन के साथ तालाब पर कब्ज़ा लेने पहुँचे तो पशुओं को पानी की चिन्ता से परेशान गाँव वालों ने संगठित

सोने से मंहगी घड़ाई :

और अटारी खेजड़ा की सामुदायिक कोशिशों के मुक़ाबले ज़रा मौजूदा सरकारी योजनाओं को भी देखें। सन् 1995-96 में विदिशा जिले में सात परकोलेशन टैंक बनाना तय हुआ। मकसद था भूमिगत जल स्तर बढ़ाना।

परलोकेशन टैंक के लिये जिन स्थलों का चयन किया गया, उनमें से एक था, खैरोदा गाँव का बंजर पठार। हलके ढलान वाले इस पठार पर बरसात के तुरंत बाद काम शुरू कर दिया गया। तालाब की नींव खोद कर उसमें मिट्टी के लौंदे भरने का सिलसिला शुरू हुआ। लौंदे बनाने के लिये आसपास की खन्तियों से पानी लिया जाने लगा, पर जल्दी ही उनका पानी खत्म हो गया। अफसर चिंतित हो गये।

⇨

प्रतिरोध करके कब्ज़ा नहीं होने दिया। फौजदारी की नौबत आ गई, पर पूरा गाँव एक तरफ था सो झगड़े की जगह मामला अदालत में चला गया।

मामला साल–दर–साल पहले निचली अदालत में, फिर जिले में और फिर हाईकोर्ट में चलता रहा। करीब चालीस साल तक हजारों रुपये खर्च करने के बाद भी ग्राम–पंचायत हार गई।

पानी की लड़ाई लड़ रहे ग्रामीणों ने हार जाने के बावजूद तालाब पर से कब्ज़ा नहीं छोड़ा। ग्राम–पंचायत के खिलाफ कुर्की–डिकरी हो गई पर गाँव वाले फिर भी तालाब छोड़ने को तैयार नहीं हुए। सार्वजनिक हित और संगठित प्रतिरोध के आगे पुलिस प्रशासन भी नये बने मालिकों को तालाब पर कब्जा नहीं दिला पाये। थक–हार कर पुलिस ने दोनों पक्षों के बीच मध्यस्थता करते हुए गाँव के संरपंच को सुझाव दिया कि ग्राम–पंचायत तालाब खरीद ले। पैसों का इन्तज़ाम न होने पर भी सरपंच ने हामी भर ली।

सोच विचार के बाद पठार पर वहीं कुएँ की खुदाई शुरू हो गई पर पथरीली ज़मीन में 7-8 फुट से ज़्यादा खुदाई नहीं की जा सकी। उतने में ही पानी मिल गया। पर जाड़ा खतम होते-होते वह कच्चा कुआँ सूख गया। अफसर फिर परेशान हो गये।

तालाब बांधने की प्रकिया में पानी की भारी जरूरत थी ताकि पाल की मिट्टी को गीला कर के रोलर से ठीक से दबाया जा सके। परेशान अफसरों ने अब की दफा टैंकरों से पानी ढुलवाना शुरू कर दिया। पर जल्दी ही उनकी समझ में आ गया कि सोने से घडाई मंहगी पड़ने वाली है।

खूब सोचने-विचारने के बाद दो किलोमीटर दूर के एक नाले पर एक पंप बैठाल कर एक किलोमीटर आगे एक गड्ढे में पाइप के ज़रिये पानी लाया गया। फिर वहाँ गड्ढे पर एक और पम्प लगा कर पानी निर्माणाधीन तालाब तक लाया गया। तब पाल की कुछ तलाई हो पाई। फिर नाले में भी पानी कम पड़ गया, सो जैसे-तैसे काम निपटाया गया। तलाई में कसर रह गई।

नतीज़ा ? पहला– पांच लाख रुपये के इस परकोलेशन टैंक में बरसात के बाद एक बूंद पानी भी नहीं ठहरा। दूसरा– अफसरों ने कसम खाई कि वे अब जहाँ भी परकोलेशन टैंक बनवायेंगे, पानी का इन्तज़ाम पहले करेंगे।

✦✦✦

तालाब के नये बने मालिक ने भी पूरे गाँव के पशुओं को पानी के सवाल पर तय कर लिया कि यदि उन्हें एक लाख रुपये मिल जायेंगे तो वे तालाब पंचायत को दे देंगे। गाँव वालों के सामने सबसे बड़ा सवाल पैसे का था कि इतना पैसा कहाँ से आयेगा। सो गाँव वालों ने घर–घर चन्दा करने की ठानी। लोगों ने क्षमता के मुताबिक पाँच रुपये से पाँच हजार तक का चन्दा दिया। जन–जन की भागीदारी से ग्राम पंचायत का काम बन गया।

तीन अगस्त 95 को तालाब ग्राम पंचायत के नाम हो गया। रजिस्ट्री पर खर्च आया बारह हजार। लम्बी कानूनी लड़ाई लड़ और हार कर भी अटारी खेजड़ा के ग्रामीण अपनी एकता और संकल्प शक्ति के बूते जीत गये। श्री लढ्ढा ने जिस मकसद के लिये तालाब दान किया था, तालाब उस काम में आया तो, पर ग्रामीणों को पक्की मालिकी के लिये चालीस साल लड़ने के बाद एक लाख रुपये से भी ज़्यादा रकम खर्च करना पड़ी।

ग्राम पंचायत ने तालाब को नया रूप देने के लिये जनवरी 96 में डेढ़ लाख रूपये की योजना सरकार को भेजी है,लेकिन राजीव गांधी जल–ग्रहण–क्षेत्र, परकोलेशन टैंक, सिंचाई तालाब, बाँध और भी न जाने कौन–कौन सी योजना बनाने और लागू करने का दावा करने वाली सरकार साल भर बाद भी अटारी खेजड़ा के ग्रामीण समाज की एकता, संकल्प और संघर्ष की भावना का सम्मान नहीं कर पाई है।

गुम होते ताल

ग्राम्य जीवन के आधार थे तालाब।
अनबई तालाब जो नष्ट होता जा रहा है।

कहाँ गुम होते जा रहे हैं ये तालाब ?

पुराने लोगों को आज भी छप्पनियाँ काल की याद है। छप्पनियाँ काल यानि कि संवत् 1956 में पड़ा अकाल। तब पूरे अँचल में बहुत कम वर्षा हुई थी। अकाल में जो थोड़ा–बहुत मोटा–झोंटा अनाज मिलता भी था, उसे सिर्फ सम्पन्न परिवार ही खरीद पाते थे। गरीब ऊमर के पेड़ ढूँढते फिरते थे, ताकि उनके फल या छाल को सुखा–पीस कर खाने को कुछ बना सकें। वे गरीब खुशनसीब होते थे, जिन्हें झुरझुरु (एक घास) के बीजों को पीस कर बनाया गया दलिया खाने को मिल जाया करता था। ऐसे दुष्काल में, कई गाँवों से, लोगों ने रोजगार की तलाश में पलायन शुरू कर दिया था।

छप्पन के अकाल का असर तीन साल तो बिल्कुल साफ रहा, लेकिन उसके बाद भी कई सालों तक जनता उससे उबर नहीं पाई। तब लोगों का पलायन रोकने और रोजगार उपलब्ध कराने के लिए, तत्कालीन ग्वालियर रियासत ने नये तालाब बनवाने और पुरानों की मरम्मत करवाने का सिलसिला शुरू किया था। तब के भेलसा और गंजबासौदा परगने में सन् 1916 तक 47 पुराने तालाबों का पुनरुद्धार किया गया था और सात नये तालाब बनवाये गये थे।

ये पुराने 47 तालाब मूलतः निस्तारी तालाब थे, जो सदियों से नहाने–धोने और पशुओं को पानी उपलब्ध कराने के काम आते थे। ये और

इन जैसे दूसरे अनगनित तालाबों के निर्माताओं का न तो कोई पता ठिकाना है और न ही कोई ज्ञात इतिहास। ये तालाब और उनके किनारे बने कुओं–बावड़ियों से लोग सदियों से लाभ उठाते चले आ रहे थे। इन तालाबों में इकट्ठा बारिश का पानी धरती माता की प्यास बुझाता था और रिसता हुआ किनारे के जल–स्रोतों को जल समृद्ध रखता था। बाद में, जब तालाब फोड़ दिये गये, तो किनारे के जल–स्रोत भी सूख गये।

सचमुच, ये धरती माता, एक मटके के समान ही है, जिसमें से लगातार पानी उलीचा जा रहा है। हमारे तालाब अंशतः ही सही, लेकिन इस मटके को भरने का ही काम करते थे। सिंचाई का विचार एक तरफ रख कर यदि सोचा जाये, तो जहाँ भी तालाब थे वहाँ के कुओं–बावड़ियों में कम–से–कम पीने को पानी तो मिल ही जाता था; पर पिछले कुछ वर्षों में ज़मीन की बढ़ती भूख और फिर सिंचाई की बढ़ती ललक ने बचे–खुचे तालाबों और उन पर निर्भर जल–स्रोतों की आखिरी बूंद तक चूसने के पक्के इंतज़ाम कर दिये हैं। अब, जबकि धरती माता खुद ही प्यासी रहने लगी है, तो नल कूपों का हर रोज नीचे उतरता पानी हमें कहाँ से और कब तक पानी पिलायेगा ? जल–संकट

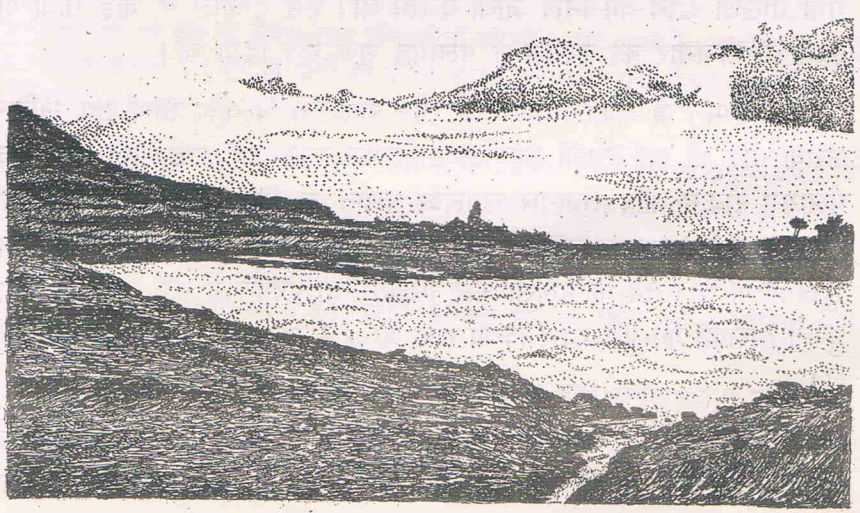

भाल बामौरा
का
फूटा तालाब।

के इस दौर में हमारे नये जल–प्रबन्ध पर एक बार फिर से विचार करने की जरूरत आन पड़ी है। जरा सोचिये, यदि अनाज कम पैदा हुआ, तो बाहर से मंगाया जा सकता है पर पीने को पानी ही नहीं बचेगा, तो ? ऐसे में तलाश करना जरूरी हो गया कि–

कहाँ गुम होते जा रहे हैं, ये तालाब ?

हिरनई तालाब : विदिशा से दस मील उत्तर–पूर्व में स्थित हिरनई गाँव में सन् 2910 में एक पुराने तालाब की जगह यह तालाब बनाया गया था। तब इसके ऊपर 5,385 रु. खर्च आया था।

कुल डूब क्षेत्र : 371 बीघा, कुल क्षमता : 1,84,85,312 धन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 4,65,000 घन फुट

इमलिया तालाब : विदिशा से 7 मील उत्तर में बसे इमलिया गाँव के इस पुराने तालाब की मरम्मत 1910 में करवाई गई थी। तब पुराने तालाब की कीमत 1500 रु. मानकर इसके सुधार और विस्तार पर 6,6,08 रु. खर्च किये गये थे ।

कुल डूब क्षेत्र : 143 बीघा, कुल क्षमता : 1,19,17,500 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 3,13,125 घन फुट

खरबई ताल : यह पुराना तालाब विदिशा से 7 मील दक्षिण–पूर्व में स्थित था। सन् 1909 में इसकी कीमत 1000 रु. मानकर मरम्मत पर 5,933 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 88 बीघा, कुल क्षमता : 87,27,500 घनफुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 3,89,000 घन फुट

लश्करपुर ताल : विदिशा से 8 मील उत्तर–पश्चिम में यह एक पुराना तालाब था । सन् 1910 में इसकी कीमत 1000 रु. मानकर इसकी मरम्मत पर 6,482 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 203 बीघा, कुल क्षमता : 1,60,51,750 घनफुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 6,13,333 घन फुट

मदनखेड़ी ताल : विदिशा से 8 मील दक्षिण–पश्चिम में सन् 1910 के करीब पुराने तालाब की जगह एक नया तालाब बनाया गया था। तब तालाब की लागत 6,200 रु. आई थी।

कुल डूब क्षेत्र : 131 बीघा, कुल क्षमता : 1,28,23,333 वर्ग फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 12,43,333 घनफुट

रसूला तालाब : विदिशा से 6 मील पूर्व की ओर यह एक पुराना तालाब था। सन 1909 में मूल तालाब की कीमत 31,000 रु. मानकर इसकी मरम्मत पर 7,083 रु. खर्च

कहाँ गुम होते जा रहे हैं– हम ?

इस पुस्तक की वस्तु और पहले रखे गये उसके नाम (कहाँ गुम होते जा रहे हैं तालाब) से मुझे अचानक केप्टेन जे. एफ. दस्तूर के द्वारा कई वर्ष पूर्व लिखी गई पुस्तक 'दिस ऑर एल्स' की याद आ गई जिसमें ऊपर ही यह नारा लिखा गया था- 'इण्डिया हैज़ मोर वेल्थ इन वाटर दैन अरेबिया हैज़ इन ऑइल'। कुछ लोगों की जानकारी के लिये बतलाना उचित होगा कि केप्टेन जे. एफ. दस्तूर एक इंजीनियर-कन्सल्टेंट थे जिनकी फर्म 'दस्तूर एण्ड कम्पनी' ने बोकारो स्टील प्लान्ट की प्रॉजेक्ट रिपोर्ट बनायी थी। परन्तु यह रिपोर्ट रूसी सरकार को पसन्द नहीं आई जो प्रॉजेक्ट के लिये ऋण दे रही थी और रूस के दबाव में आकर भारत सरकार ने उसे दरकिनार करके रूस द्वारा तैयार की गयी प्रॉजेकट रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया। दस्तूर एण्ड कं. की प्रॉजेक्ट रिपोर्ट में उस समय के अखबारों के अनुसार प्रॉजेक्ट की लागत काफी कम आँकी गई थी। 'ऋणम कृत्वा घृतम पिवेत' की हमारी जवाहरलाल नेहरू कालीन आर्थिक नीति के तहत जब पैसा रूसी सरकार से ही आना था तो प्रॉजेक्ट की लागत कम हो या ज़्यादा हमको क्या फ़र्क पड़ने वाला था ?

दस्तूर की उपरोक्त पुस्तक में भारतीय अर्थव्यवस्था के संकट और उसकी पतनशीलता का कुछ विश्लेषण था और देश के विकास एवं अर्थव्यवस्था से संबंधित कुछ सुझाव। कभी-कभी बहुत बड़ी-बड़ी समस्याओं के बहुत सीधे-सादे छोटे-छोटे हल होते हैं। परंतु जिन समस्याओं को हम बड़ी और जटिल मान लेते हैं उनके छोटे और सीधे-सादे हलों को हमारा मानस स्वीकार करने से घबराता है या उन पर यकीन नहीं ला पाता। यह भी है कि पहले तो हम अपने कामकाज को व्यवस्थित और दक्षता पूर्वक चलाने के लिये प्रणालियाँ बनाते हैं जो धीरे-धीरे एक तंत्र बन जाती हैं और कालांतर में तंत्र इतना प्रबल हो जाता है कि उसकी रक्षा हमारी प्राथमिकता बन जाती है- कामकाज गौण हो जाता है। हमारी राज व्यवस्था का हर

किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 126 बीघा, कुल क्षमता : 95,95,083 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 6,93,333 घनफुट

मुरारी ताल : गुलाबगंज से 3 मील उत्तर–पूर्व की ओर तथा विदिशा से 15 मील उत्तर–पश्चिम में स्थित, यह एक पुराना तालाब था। सन् 1913 में इसका सुधार कार्य करवाया गया था। तब पुराने तालाब की कीमत 1000 रु. मानकर उसकी मरम्मत पर 3000 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 83 बीघा, कुल क्षमता : 97,80,933 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 10,00,833 घनफुट

देरखी तालाब : बासौदा से 6 मील दक्षिण–पूर्व में यह नया तालाब रियासत ने सन् 1914 में बनवाया था। तब इस पर 11,180 रु. खर्च आया था।

कुल डूब क्षेत्र : 244 बीघा, कुल क्षमता : 2,25,88,125 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 3,75,000 घनफुट

धारूखेड़ी तालाब : मन्डी बामोरा रेल्वे स्टेशन से 14 मील उत्तर–पश्चिम में इसे एक पुराने तालाब की जगह बनवाया गया था। सन् 1910 में इसकी मूल लागत 2000 रु. आँकते हुये, इसके सुधार पर 12,373 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 261 बीघा, कुल क्षमता : 3,56,98,125 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 12,88,125 घनफुट

घामनौद तालाब : पबई स्टेशन से 20 मील और विदिशा से 30 मील दूर घामनौद गाँव में यह एक पुराना तालाब था। पुराने तालाब की कीमत 1000 रु. मानते हुये, सन् 1909 में 3,379 रु. खर्च करके इसकी मरम्मत करवाई गई थी।

कुल डूब क्षेत्र : 75 बीघा, कुल क्षमता : 54,26,250 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 7,35,000 घनफुट

फरीदपुर तालाब : यह भी एक पुराना तालाब था। गंजबासौदा से 6 मील दक्षिण में फरीदपुर गाँव से एक मील उत्तर में बने इस तालाब की कीमत सन् 1909 में 2000 रु. आँकी गई थी, और इस तालाब की मरम्मत पर 6,834 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 151 बीघा, कुल क्षमता : 1,28,19,500 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 4,20,000 घनफुट

ग्यारसपुर तालाब : ग्यारसपुर कस्बे से एक मील दूर यह बड़ा पुराना और लम्बाई में फैला हुआ तालाब था। इस तालाब की मरम्मत के निर्देश ग्वालियर रियासत के तत्कालीन शासक माधवराव सिंधिया ने सन् 1904 में दिये थे। उनकी विशेष दिलचस्पी की वजह से इस तालाब में सुधार और मरम्मत का काम सन् 1908 से 1911 तक चला। पुराने तालाब की कीमत 2000 रु. मानकर इसके सुधार पर 7,803 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 264 बीघा, कुल क्षमता : 1,92,60,000 घन फुट
सिंचाई के बाद शेष पानी : 7,35,000 घनफुट

गरहालो तालाब : पबई रेल्वे स्टेशन से 5 मील दक्षिण–पूर्व में यह एक पुराना और नष्टप्राय तालाब था। इसी तालाब को रियासत ने नये सिरे से सन् 1910 में फिर से बनवाया। तब उस पर 7,496 रु. खर्च आया था।
कुल डूब क्षेत्र : 293 बीघा, कुल क्षमता : 2,56,20,000 घन फुट
सिंचाई के बाद शेष पानी : 1,40,000 घनफुट

घोंसुआ तालाब : मुगाँवली रेल्वे स्टेशन से 13 मील दक्षिण की ओर बीना स्टेशन से 12 मील पश्चिम में यह विशाल तालाब एक पुराने नष्टप्राय तालाब की जगह बनवाया गया था। सन् 1910 के करीब निर्मित इस तालाब पर तब 13,940 रु. की लागत आई थी।
कुल डूब क्षेत्र : 293 बीघा, कुल क्षमता : 4,27,66,666 घन फुट
सिंचाई के बाद शेष पानी : 13,86,666 घनफुट

गुलाबरी तालाब : गंजबासौदा से 16 मील दक्षिण–पूर्व में यह एक बेहद पुराना तालाब था। सन् 1911 में इसकी लागत 1000 रु. मानकर इसकी मरम्मत पर 882 रु. खर्च किये गये थे।
कुल डूब क्षेत्र : 61 बीघा, कुल क्षमता : 62,50,000 घन फुट
सिंचाई के बाद शेष पानी : 3,60,000 घनफुट

हिन्नौदा तालाब : पबई रेल्वे स्टेशन से 4 मील दक्षिण–पूर्व में यह एक बेहद पुराना तालाब था। सन् 1910 में इसकी लागत 2000 रु. मानकर इसकी मरम्मत पर 7,681 रु. खर्च किये गये थे।
कुल डूब क्षेत्र : 108 बीघा, कुल क्षमता : 1,21,27,500 घन फुट
सिंचाई के बाद शेष पानी : 3,95,000 घनफुट

कबूलपुर तालाब : पबई रेल्वे स्टेशन से 7 मील पूर्व की ओर कबूलपुर गाँव में यह एक पुराना तालाब था। सन् 1909 में इसकी मूल लागत 1,500 रु. मानते हुए इसकी मरम्मत पर 6,850 रु. खर्च किये गये थे।
कुल डूब क्षेत्र : 401 बीघा, कुल क्षमता : 3,73,84,013 घन फुट
सिंचाई के बाद शेष पानी : 6,18,750 घनफुट

खामखेड़ा तालाब : त्योंदा से 3 मील उत्तर–पूर्व बरेठ रेल्वे स्टेशन से 16 मील दक्षिण–पूर्व में खामखेड़ा गाँव के पास पुराने तालाब की जगह यह नया तालाब सन् 1910 के करीब बनवाया गया था। पुराने तालाब की कीमत तब 1000 रु. मानकर उसकी मरम्मत और सुधार पर 5,429 रु. खर्च किये गये थे।
कुल डूब क्षेत्र : 124 बीघा, कुल क्षमता : 1,26,70,000 घन फुट
सिंचाई के बाद शेष पानी : 5,28,750 घनफुट

लड़ेरा ताल : गंजबासौदा से 9 मील और बरेठ रेल्वे स्टेशन से 4 मील दूर यह एक बेहद पुराना तालाब था। सन् 1910–11 में इस तालाब की मूल कीमत 1000 रु. मानी गई थी, और मरम्मत पर 1,397 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 44 बीघा, कुल क्षमता : 1,81,666 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 41,41,666 घनफुट

लाड़पुर तालाब : गंजबासौदा से 16 मील पश्चिम में यह एक पुराना तालाब था। सन् 1908 में इसकी कीमत 1000 रु. मानकर इसके सुधार पर रियासत ने 2,727 रु. खर्च किये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 47 बीघा, कुल क्षमता : 43,81,000 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 1,20,000 घनफुट

मढ़ियासेमरा तालाब : पबई रेल्वे स्टेशन से 1 मील पश्चिम में और मढ़ियासेमरा गाँव से 4 मील पूर्व में यह एक पुराना तालब था। सन् 1909 में पुराने तालाब की कीमत 1,500 रु. आंकी गई और मरम्मत और सुधार पर 8,424 रु. खर्च किये गये।

कुल डूब क्षेत्र : 90 बीघा, कुल क्षमता : 79,52,000 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 1,46,250 घनफुट

पिपरियानाग ताल : यह पुराना तालाब विदिशा से 6 मील दूर पिपरिया गाँव में था। इस तालाब की मूल लागत 2000 रु. मानकर सन् 1910 में इसके सुधार पर 408 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 23 बीघा, कुल क्षमता : 19,89,998 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 10,83,333 घनफुट

सलालिया तालाब : विदिशा से 18 मील उत्तर–पश्चिम में यह बहुत पुराना तालाब था। इसकी लागत 2000 रु. मानकर इसकी मरम्मत पर सन् 1910 में 7,866 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 65 बीघा, कुल क्षमता : 92,60,000 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 6,67,500 घनफुट

सौजना ताल : सुमेर रेल्वे स्टेशन से 4 मील दक्षिण–पूर्व में और विदिशा के 12 मील उत्तर–पूर्व में सौजना गाँव में सन् 1912 में ग्वालियर रियासत ने यह तालाब बनवाया था। तब इसकी लागत 15,598 रु. आई थी।

कुल डूब क्षेत्र : 589 बीघा, कुल क्षमता : 8,35,00,000 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 55,00,000 घनफुट

ठर्र तालाब : विदिशा से 12 मील पूर्व में एक पुराने मामूली तालाब की जगह यह विशाल तालाब सन् 1910 में बनवाया गया था। तब इस पर 9,722 रु. का खर्च आया था, और यह पूरा नहीं बन सका था।

कुल डूब क्षेत्र : 399 बीघा, कुल क्षमता : 4,34,51,718 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 14,28,750 घनफुट

उत्तमाखेड़ी तालाब : यह पुराना तालाब विदिशा से 16 मील उत्तर में उत्तमाखेड़ी गाँव में स्थित था। सन् 1914 में इसकी मूल लागत 1000 रु. मानकर, तालाब के सुधार पर 3,395 रु. खर्च हुये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 104 बीघा, कुल क्षमता : 67,95,000 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 2,47,500 घनफुट

पारिया ताल : यह पुराना तालाब विदिशा से 8 मील उत्तर में स्थित था। सन 1910 में इसकी लागत 1000 रु. मानकर इसकी मरम्मत पर 7,919 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 363 बीघा, कुल क्षमता : 1,98,33,720 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 3,54,370 घनफुट

नीमताल : यह पुराना तालाब बेहद खस्ता हालत में था। सन् 1902–03 में ग्वालियर रियासत के तत्कालीन शासक माधवराव सिंधिया द्वारा विदिशा शहर से सटे हुए इस तालाब को चारों तरफ से बाँधने व विस्तार करने के निर्देश दिये गये थे। तब पुराने मूल तालाब की कीमत 4000 रु. आँकी जाकर मरम्मत और सुधार का 6,685 रु. का एस्टीमेट बनाया गया, लेकिन इस पर सिर्फ 1088 रु. खर्च किया गया। पहले इससे सिंचाई की योजना बनाई गई थी लेकिन बाद में इसका खास मकसद विदिशा के लोगों को नहाने–धोने और जानवरों को पानी पिलाने की सुविधा उपलब्ध कराने तक सीमित रखा गया। सन् 1908 में इसका कार्य पूरा हुआ।

कुल डूब क्षेत्र : 83 बीघा, कुल क्षमता : 74,96,000घन फुट

धतूरिया ताल : यह तालाब गुलाब गंज से उत्तर–पश्चिम और विदिशा से उत्तर दिशा में 17 मील के फासले पर धतूरिया गाँव में था। सन् 1910–11 में इस पुराने तालाब की मूल कीमत 3000 रु. आँकी जाकर इसकी मरम्मत पर 9611 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 240 बीघा, कुल क्षमता : 21047500 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 2,10,000 घनफुट

डंगरवाड़ा ताल : विदिशा से 16 मील दक्षिण–पश्चिम में डंगरवाड़ा गाँव में स्थित इस पुराने तालाब की मूल कीमत सन् 1910 में 1000 रु. मानी गई थी। पुराने तालाब की मरम्मत पर 2,360 रु. खर्च करके तालाब में सुधार किया गया था।

कुल डूब क्षेत्र : 103 बीघा, कुल क्षमता : 7,19,4,375 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 6,37,500 घनफुट

इकौदिया ताल : गुलाबगंज से 14 मील उत्तर–पश्चिम में इकोदिया गाँव के पुराने तालाब की कीमत सन् 1908 में 2000 रु. मानकर उसकी मरम्मत पर 7831 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 166 बीघा, कुल क्षमता : 14,44,5,156 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 10,9,1,250 घनफुट

पुराघटेरा ताल : विदिशा से पूर्व में 20 मील दूर यह विशाल तालाब ग्वालियर रियासत

में 1910 के आसपास बनवाया गया था। तब इसके निर्माण पर 1,04,153 रु. लागत आई थी।

कुल डूब क्षेत्र : 515 बीघा, कुल क्षमता : 1,14,33,4,916 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 35,43,333 घनफुट

गोबरहेला तालाब : विदिशा से दक्षिण–पूर्व की ओर 10 मील के फासले पर गोबरहेला नाम के छोटे से गाँव के इस पुराने तालाब की मरम्मत सन् 1912 में ग्वालियर रियासत ने कराई थी। तब इस पुराने तालाब की लागत 2000 रु. मानकर सुधार पर 17,525 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 474 बीघा, कुल क्षमता : 5,76,36,666 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 10,6,666 घनफुट

खमतला : यह नया तालाब ग्वालियर रियासत ने विदिशा से 7 मील उत्तर–पश्चिम में बनवाया गया था। सन् 1908 में इसकी लागत 3,458 रु. आँकी गई थी।

कुल डूब क्षेत्र : 136 बीघा, कुल क्षमता : 1,01,13,750 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 13,51,250 घन फुट

खमतला–
बस खम्ब ही
बाकी है।

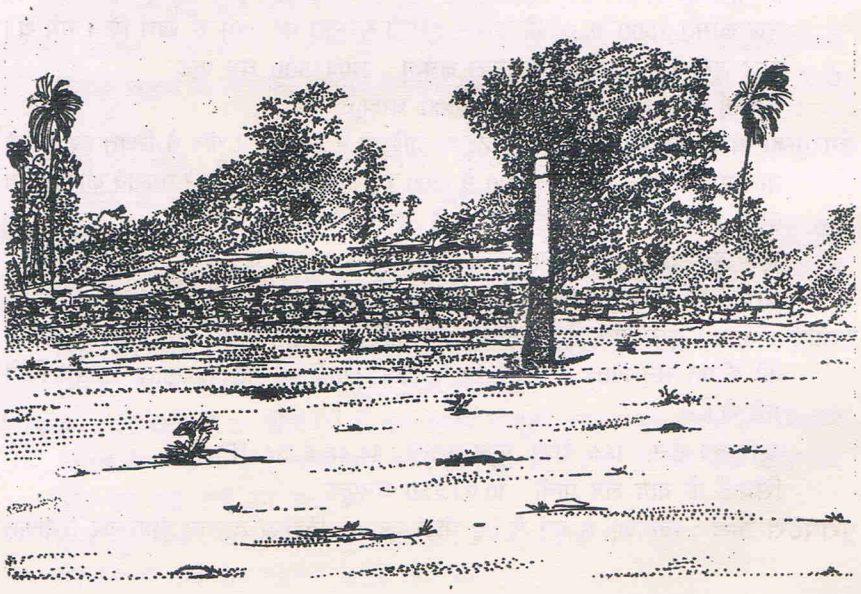

गुनसागर ताल : विदिशा से एक मील उत्तर–पूर्व की ओर बना यह पुराना और खस्ताहाल तालाब था। 1907 में फिर 332 रु. खर्च करके तालाब की मरम्मत की गई। तब पुराने तालाब की मूल कीमत 1000 रु. मान ली गई थी। इसका पानी सिंचाई के काम तो आता ही था, लेकिन मूल मकसद सिंघाड़ा और वैटलनट की खेती था जिनका बाजार विदिशा में अच्छा खासा था।

कुल डूब क्षेत्र : 58 बीघा, कुल क्षमता : 22,05,000 घन फुट

हिरनौदा ताल : यह पुराना तालाब विदिशा से 8 मील उत्तर–पश्चिम में स्थित था। सन् 1909–10 में इस पुराने तालाब की मूल कीमत 1000 रु. मानकर इसकी मरम्मत पर 9,181 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 270 बीघा, कुल क्षमता : 2,39,20,000 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 12,30,000 घनफुट

नैनाताल : विदिशा से डेढ़ मील उत्तर–पूर्व में यह एक पुराना तालाब था। सन् 1903 में ग्वालियर के तत्कालीन शासक माधवराव सिंधिया ने अपने दौरे के वक़्त इस विशाल तालाब की मरम्मत के आदेश दिये थे। उस समय पुराने तालाब की कीमत 4000 रु. मानी गई थी और इसके सुधार पर 4,978 रु. का खर्च आया था। तालाब पर मरम्मत का काम सन् 1909 में पूरा हुआ था ।

कुल डूब क्षेत्र : 279 बीघा, कुल क्षमता : 2,55,42,001 घन फुट

पठारी ताल : विदिशा से 8 मील दक्षिण–पूर्व में पठारी गाँव में यह पुराना तालाब था, जो इसी नाम की पूर्व पठारी रियासत के तालाब से अलग था। सन् 1914 में तालाब की मूल लागत 500 रु. मानकर इसके सुधार कार्य पर 1045 रु. खर्च हुए।

कुल डूब क्षेत्र : 34 बीघा, कुल क्षमता : 24,16,666 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 84,166 घनफुट

आटासेमर तालाब : पबई रेल्वे स्टेशन से 13 मील दक्षिण–पूर्व में यह एक पुराना तालाब था। सन् 1909–10 में इसकी लागत 1000 रु. आँकी गई थी और इसके सुधार कार्य पर 4,539 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 92 बीघा, कुल क्षमता : 87,90,523 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 33,333 घनफुट

बागरोद तालाब : बासौदा से 18 मील पूर्व में बागरोद गाँव में यह एक पुराना नष्टप्राय तालाब था, जिसे नये सिरे से रियासत ने सन् 1910 में बनवाया था। तब इसकी निर्माण लागत 3,9,41 रु. आई थी।

कुल डूब क्षेत्र : 96 बीघा, कुल क्षमता : 62,82,500 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 2,45,000 घनफुट

बामनिया ताल : बासौदा से 9 मील उत्तर–पश्चिम में यह एक पुराना तालाब था। सन् 1912 में इसकी क़ीमत 1000 रु. मानकर इसके सुधार पर 3,767 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 107 बीघा, कुल क्षमता : 1,08,20,000 घन फुट
सिंचाई के बाद शेष पानी : 2,87,916 घनफुट

विजावासन तालाब : गंज बासौदा से 11 मील दक्षिण–पूर्व में लगभग नष्टप्राय इस पुराने तालाब को रियासत ने सन् 1910 में नये सिरे से बनवाया था। तब इस तालाब की निर्माण लागत 8,720 रु. आई थी।
कुल डूब क्षेत्र : 276 बीघा, कुल क्षमता : 3,42,77,500 घन फुट
सिंचाई के बाद शेष पानी : 3,60,000 घनफुट

बूढ़ी बागरोद तालाब : यह तालाब बासौदा से 20 मील पूर्व में एक पुराना तालाब था, जिसमें बागरोद तालाब से निकले अतिरिक्त पानी को रोका जाता था। सन् 1911 में इसकी कीमत 3000 रु. मानकर 16,324 रु. इसकी मरम्मत पर खर्च किये गये थे।
कुल डूब क्षेत्र : 432 बीघा, कुल क्षमता : 4,07,10,000 घन फुट
सिंचाई के बाद शेष पानी : 52,10,000 घनफुट

तालवैड़ तालाब : ग्वालियर रियासत के अंदर यह छोटा सा तालाब हैदरगढ़ के पास तालवैड़ गाँव के पास था। यह जगह, आसपास दूसरी रियासतों से घिरी हुई थी, और यहाँ सीमा संबंधी विवाद बना रहता था। विवाद सुलझाने के लिए ग्वालियर रियासत ने तालवैड़ में इस खूबसूरती के साथ पक्की दीवार बनवाई कि वहाँ एक शानदार तालाब का निर्माण हो गया। इस तालाब के निर्माण पर सन् 1912–15 में 1,512 रु. खर्च किये गये थे। अब इसे मृगननाथ तालाब के नाम से जाना जाता है।
कुल डूब क्षेत्र : 31 बीघा, कुल क्षमता : 42,69,166 घन फुट

मृगननाथ तालाब।

परसौरा तालाब : गंजबासौदा से 3 मील पूर्व में और रेल्वे स्टेशन से 2 मील उत्तर–पूर्व में यह एक नष्टप्राय तालाब था। इसे ग्वालियर रियासत ने 1910 के करीब नये सिरे से बनवाया था। तब इस पर 9,2,43 रु. खर्च आया था।

कुल डूब क्षेत्र : 268 बीघा, कुल क्षमता : 2,99,86,667 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 13,06,667 घनफुट

सौंसेरा तालाब : विदिशा से 25 मील उत्तर–पूर्व सौसेंरा गाँव में रियासत ने एक पुराने तालाब की जगह यह नया तालाब बनवाया था। सन् 1914 में इसके निर्माण पर 14,505 रु. खर्च आया था।

कुल डूब क्षेत्र : 296 बीघा, कुल क्षमता : 3,14,60,000 घन फुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 22,20,000 घनफुट

बागरी ताल : विदिशा के उत्तर में 5 मील दूर इस पुराने तालाब की ग्वालियर रियासत ने सन् 1910–11 में मरम्मत करवा कर क्षमता बढ़ाई थी। तब इसकी लागत एक हजार रु. आंकी गई थी और मरम्मत पर 5,690 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 205 बीघा कुल क्षमता : 1,40,95,000 घनफुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 80,000 घनफुट

वामनखेड़ा ताल : यह विदिशा से 5 मील उत्तर में वामनखेडा गाँव में था। इस पुराने तालाब की मूल लागत सन् 1912 में 500 रु. आंक कर मरम्मत पर 4,230 रु. खर्च किये गये थे।

कुल डूब क्षेत्र : 149 बीघा कुल क्षमता : 80,70,000घनफुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 9,90,000 घनफुट

बर्रो ताल : विदिशा से 18 मील उत्तर–पश्चिम में ग्राम बर्रो में यह एक पुराना तालाब था। सन् 1910 में इसकी मूल कीमत 1000 रु. मानकर इसकी मरम्मत पर 5,445 रु. खर्च किये गये थे

कुल डूब क्षेत्र : 102 बीघा कुल क्षमता : 1,28,60,208 घनफुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 2,33,333 घनफुट

बिलौरी ताल : यह पुराना तालाब विदिशा से 9 मील उत्तर–पश्चिम में बसे बिलौरी गाँव में था। इस पुराने तालाब को सन् 1911 में दस हज़ार रु. की कीमत का मानकर इसकी मरम्मत पर 39,500 रु. खर्च किये गये थे। यह उस समय धान की खेती के लिहाज से बनवाया गया था जो उस समय विदिशा में बहुत पैदा होती थी।

कुल डूब क्षेत्र : 35 बीघा, कुल क्षमता : 26,37,500 घनफुट

सिंचाई के बाद शेष पानी : 42,500 घनफुट

चितौरिया ताल : विदिशा से 12 मील उत्तर–पूर्व में ग्राम चितौरिया में सन् 1910 के करीब यह नया तालाब सिंचाई के उद्देश्य से बनवाया गया था। इस तालाब की लागत उस समय 69,225 रु. आयी थी।

कुल डूब क्षेत्र : 1,053 बीघा, कुल क्षमता : 12,99,32,046 घनफुट
सिंचाई के बाद शेष पानी : 1,06,43,750 घनफुट

देवराजपुरा तालाब : विदिशा से 8 मील दक्षिण–पूर्व में बसे देवराजपुरा के पुराने तालाब के सुधार पर 1910–13 में 516 रु. खर्च किये गये थे।
कुल डूब क्षेत्र : 47 बीघा कुल क्षमता : 34,40,000 घनफुट
सिंचाई के बाद शेष पानी : 3,60,000 घनफुट

धनियाखेड़ी तालाब : विदिशा से डेढ़ मील पूर्व में धनियाखेड़ी गाँव के इस पुराने तालाब की मरम्मत सन् 1914 में कराई गई थी। तब मरम्मत पर 1,469 रु. खर्च आया था।
कुल डूब क्षेत्र : 43 बीघा, कुल क्षमता : 21,72,500घनफुट
सिंचाई के बाद शेष पानी : 1,05,000 घनफुट

●

સદ્ધર્મ સ્રોત સહયોગ

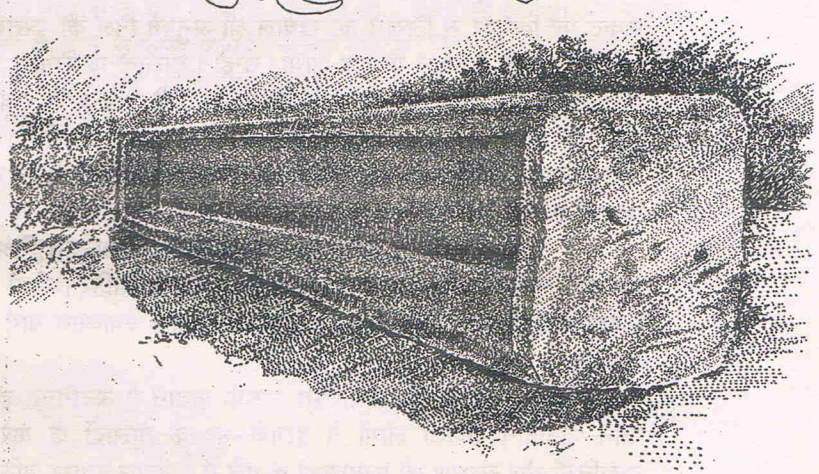

उदयगिरि के नीचे आड़ी पड़ी एक ही पत्थर की बीस फीट लम्बी विशाल चुरई।

पहलू इतना तंत्र आधारित हो चुका है कि व्यवस्था पूरी तरह से जड़ हो चुकी है। फिर भी स्थापित तंत्र को तोड़ने का साहस हम में नहीं है। दस्तूर के सुझावों पर हमारी इसी मानसिक जड़ता के कारण ठीक से विचार भी नहीं हो सका।

दस्तूर का एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव था भारत के उत्तराखण्ड के पिघलते हुए हिमखण्डों से प्राप्त होने वाली विशाल जल धाराओं को बड़ी-बड़ी नहरों द्वारा एक बृहत 'राष्ट्रीय-ग्रिड' में ले जाना जिसके द्वारा आवश्यकतानुसार उसका वितरण किया जा सके। इस योजना का प्रमुख अंग था हिमालय के समानांतर एक बड़ी नहर का निर्माण करके उसे मध्यदेश और दक्षिण में दो गोलाकार 'गार्लेन्ड' नहरों से जोड़ना और फिर इनमें बहते हुए पानी को छोटी-छोटी नहरों के द्वारा जगह-जगह ले जाना। दस्तूर ने इस पर कुल 7000 करोड़ रुपये की लागत का अनुमान लगाया था जो किसी भी राष्ट्रीय बैंक की सहायता से प्राप्त हो सकते थे। इस योजना का मूल उद्देश्य उस लाखों क्यूसेक पानी का भण्डारण और वितरण करना था जो पिघलते हिमखण्ड प्रतिवर्ष हमारी नदियों को देते हैं और जो इन नदियों के माध्यम से समुद्र के पेट में चला जाता है।

एक तरफ भीषण बाढ़ों से प्रतिवर्ष होने वाली जान-माल की हानि और दूसरी तरफ सूखे से होने वाली कृषि की हानि तथा पीने और निस्तार के लिये पानी की भारी कमी से उत्पन्न त्रासद स्थितियों की विडम्बना के निवारण की धारणा भी इसके पीछे थी। एक छोटी सी किताब में योजना की खास-खास बातें ही दे सकना संभव था। सिंचाई के लिए पानी के अलावा पेय जल और निस्तार के पानी की प्रतिपूर्ति करने वाली नहरों का देश भर में फैला हुआ एक जाल, नहरों में चलते हुए यात्री और भारवाहक जलयान, नहरों के किनारे बड़ी-बड़ी सड़कें और स्थान-स्थान पर बने जल विद्युत गृहों से प्रचुर मात्रा में प्राप्त होने वाली बिजली- तथा पूरे निर्माण कार्य के दौरान हमारी विशाल, गरीब जनसंख्या को बड़े पैमाने पर रोजी-मजूरी– सब कुछ एक अविश्वसनीय स्वप्न जैसा था। परंतु गौर से देखने पर इसमें ऐसा कुछ नहीं था जिसे दृढ़ संकल्प से पूरा न किया जा सके।

परंतु दस्तूर की योजना पर छोटी-मोटी, हल्के-फुल्के अंदाज़ की बहस हुई और विशेषज्ञों की एक समिति ने उसे अव्यावहारिक बतलाकर दफ़न कर दिया। ऐसी योजना के यद्यपि गहन परीक्षण की आवश्यकता थी और उस पर राष्ट्रीय स्तर पर बहस भी होना ज़रूरी था परंतु यह सब कुछ नहीं हुआ। अपनी अर्थव्यवस्था की जीर्ण-शीर्ण होती जा रही चादर में हम थेगड़े ही लगाते रहे और समय की जल धारा काल-समुद्र के विशाल पेट में जाती रही। 'सोने की चिड़िया' कहे जाने वाले देश की 'मास पावर्टी' की ही तरह, विशाल भौतिक

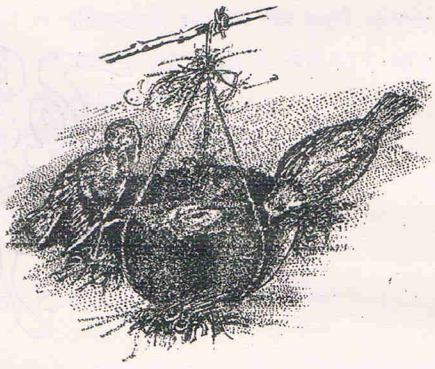

अपने इलाके में परम्परागत जल–स्रोतों की उपेक्षा और पानी के बढ़ते संकट पर विस्तार से लिखने का ख़याल श्री अनुपम मिश्र की पुस्तक 'आज भी खरे हैं, तालाब' के पढ़ने के बाद आया। उन्होंने तालाबों के निर्माण और संरक्षण की परम्परा पर बहुत बारीकी से लिखा है। उनकी पुस्तक से सूत्र पकड़ कर अपने इलाके में तालाबों और दूसरे जल–स्रोतों से उनके अन्तर्सम्बंध और तालाब नष्ट हो जाने से पैदा जल–समस्या को उनकी शैली में समझने की कोशिश इस पुस्तक में मैंने की है।

पानी की चिन्ता जिन्हें सताती हो, उन्हें श्री अनुपम मिश्र की दूसरी पुस्तक' 'राजस्थान की रजत बूँदें' भी जरूर पढ़नी चाहिए। दोनों पुस्तकों के प्रकाशक हैं, गाँधी शांति प्रतिष्ठान, 221 दीनदयाल उपाध्याय मार्ग नई दिल्ली 110 002।

इस पुस्तक की आधारभूत सामग्री जुटाने में अनगिनत हाथ लगे हैं। जाने–अनजाने सैकड़ों लोगों ने इलाके–भर के तालाबों के बारे में किस्से, कहानियाँ और संरक्षण की परम्पराओं के बारे में न केवल बताया, बल्कि ले जाकर बदहाल तालाब दिखाये भी।

विदिशा के नीमताल और 'गिग्गिक' का किस्सा वर्षो पहले वकील स्व. श्री राजकुमार जैन और शिक्षक श्री रमेश यादव ने सुनाया था। नैनाताल

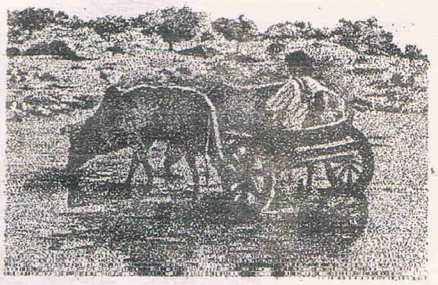

के विनाश की कहानी सिंचाई विभाग के उपयंत्री जे.एन.पौराणिक ने बताई जबकि विदिशा के तालाबों के बारे में अनेक सूचनाएँ श्री राजेन्द्रसिंह राजपूत और वकील रामशंकर मिश्र ने उपलब्ध कराईं। बेतवा नदी के लिए समर्पित बुजुर्ग पंडित मदनलाल शर्मा ने वर्षों पहले नीमताल की बरबादी पर एक लम्बी कविता सुनाई थी। कुछ अंश हैं–

"ओ मेरे प्यारे नीमताल, क्यों तेरी बिगड़ी हालत है
जब पास बनी है अस्पताल, ओ मेरे––
तुझको क्या रोग समाया है, किसको तूने बतलाया है
अब नहीं है चिन्ता जनता को, हमको चिन्ता है आज–काल
ओ मेरे प्यारे....."

यह कविता उन्होंने तीस बरस पहले तब लिखी थी, जब नीमताल को नष्ट करने का काम शुरू किया गया था। जरा–सा मौका मिलते ही वे यह कविता सुनाने से आज भी नहीं चूकते।

विदिशा के कुएँ–बावड़ियों के बारे में प्रमाणिक सूचनाएँ लोक स्वास्थ्य यांत्रिकीय के पूर्व कार्यपालन यंत्री आर. के. असाटी से मिलीं जब कि उन्हें विदिशा के श्री सुनील जैन के सौजन्य से देखा।

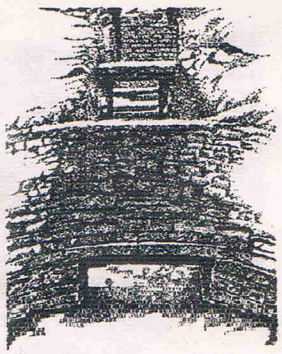

विदिशा के मोहनगिरि के तालाब पर दो दशक पहले तक आषाढ़ में मेला लगता था। यह तालाब खदान से पत्थर निकालने से बन गया था। बस्ती के लोग तालाब किनारे के महामाई के मन्दिर के बगीचे में दाल–बाटी बनाते, फिर अषाढ़ी माता की पूजा करके, वहीं खाना खाते थे। तालाब में अब शहर की नालियाँ गन्दगी उड़ेलती हैं। इसके बावजूद, तालाब किनारे के मोहनगिरि के कुएँ पर अब भी सुबह–शाम पनिहारिनों की भीड़ लगी रहती है। पहले कभी वैद्य–हकीम इस कुएँ के पानी को पाचक बताते हुए पेट के मरीजों को इसी कुएँ का पानी पीने की सलाह देते थे।

महामाई का मन्दिर अब पहले से भी भव्य बन गया है, पर तालाब बरबाद हो जाने के बाद वहाँ अषाढ़ी माता पूजने के परम्परागत तरीके में अन्तर आया है। अब श्रद्धालु घर से खाना बना कर टिफिन में लाते हैं, माता को भोग लगाते हैं और घर जाकर ही खाते हैं। मोहनगिरि तालाब से जुड़ी ये जानकारियाँ श्री नरेन्द्र ताम्रकार, श्री प्रीतम भारती गोस्वामी और डॉ. सुरेश गर्ग के सौजन्य से मिल सकी हैं।

पत्थर की या लकड़ी की चाट, चरई या चुरई अँचल भर में पुराने कुएँ–बावड़ियों पर देखने को मिलती हैं पर ऐसी सबसे बड़ी चुरई श्री भरत लद्ढा की मदद से उदयगिरि की पहाड़ी पर देखी। करीब बीस फुट लम्बी, तीन फुट

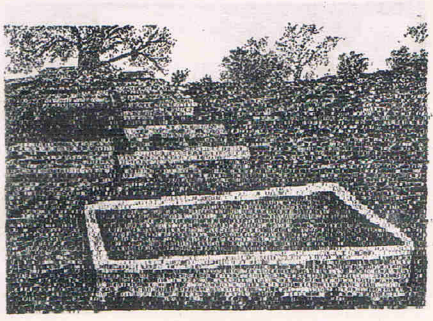

चौड़ी और तीन फुट से ज़्यादा मोटी एक ही शिला को कोलकर बनाई गई इस चुरई को देखकर गुजरात विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. भोलाभाई पटेल हैरत में पड़ गये थे। गुजराती में लिखी अपनी पुस्तक 'विदिशा, तेषां दिक्षु प्रथित विदिशा.....' में उन्होंने इसे पत्थर की नाव समझकर सवाल उठाया है कि यह पहाड़ी पर कहाँ से आई होगी ? यह तैरती भी होगी ? हिन्दी में अनूदित यह पुस्तक श्री राघवजी के सौजन्य से पढ़ने को मिली। उदयगिरि पहाड़ी पर चौथी–पाँचवी सदी की गुफाओं मूर्तिओं, और मन्दिरों के अवशेष हैं। यह विशालतम चुरई भी शायद उसी दौर में बनाई गई थी।

ऐसी ही एक विशाल चुरई उदयगिरि के नीचे भी आड़ी पड़ी है। पत्थर की चाट–चुरई भी बनाना मामूली काम नहीं था। पत्थर की शिला को महीनों इंच–इंच खोदकर चुरई बनाई जाती थी। निश्चित ही इसका मूल्य तब कम नहीं आता होगा।

बड़ोह के तालाब निर्माता गड़रिये की कहानी पुरातत्ववेत्ता श्री एम.डी. खरे की पुस्तक 'विदिशा' में आई है। बाकी जानकारी श्री गुलजारीलाल जैन बड़ोह वालों की कृपा से मिली। गड़रिये के परिवार की बलि का असली मतलब श्री अनुपम मिश्र ने समझाया। इस पुरानी बस्ती के साथ–साथ, पास में बसे पठारी के तालाब, कुएँ–बावड़ियाँ और पखी श्री लतीफखान की मदद से देख–समझ

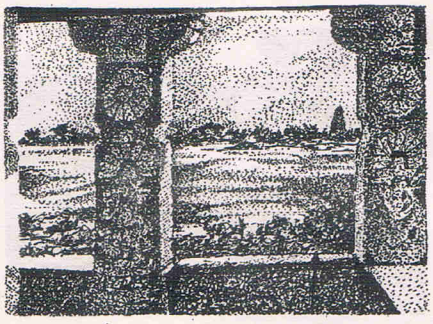

सके। अब भी गर्मियों में इस विशाल तालाब के एक छोटे–से हिस्से में ही पानी बंचता है।

पठारी के तालाब की सफाई–परम्परा और मंगला सिलावट का किस्सा पठारी के चौधरी गुलाब चन्द जैन ने सुनाया था। कभी वे भी बच्चों की उस भीड़ का एक हिस्सा हुआ करते थे, जो पठारी के निवासियों के पीछे–पीछे 'पखी' साफ करने जाया करती थी। पठारी की यह अनमोल धरोहर, बस अब कुछ ही दिनों की मेहमान है। पठारी की धुबयाऊ तलैया, गोला तलैया, कंचन तलैया, मिठयातला, गोह तलैया, मट्यातला और गुजरया ताल नाम के सात तालाबों के बारे में श्री रफीकखान ने बताया। ये तालाब दरअसल खेत ही थे, जो एक ही श्रृंखला में इस तरह बने थे कि उनमें हर एक से निकला अतिरिक्त पानी नीचे वाले तालाब में जमा हो जाता था। जरूरत पड़ने पर इन्हें एक–एक करके कुछ दिनों के अन्तराल से इस तरह खोला जाता था कि निकले हुए पानी का इस्तेमाल नीचे के खेत में हो जाता था। यह उन दिनों की बात है जब इस इलाके में धान की खेती होती थी।

ग्यारसपुर के मानसरोवर तालाब के बारे में 'विदिशा गजेटियर', एक रिपोर्ट (श्री पी.एन. श्रीवास्तव, डॉ. राजेन्द्र वर्मा) दर्शाण दर्शन (श्री निरंजन वर्मा) और विदिशा (श्री एम.डी.खरे) आदि कई पुस्तकों में जिक्र आया है। पूर्व ग्वालियर

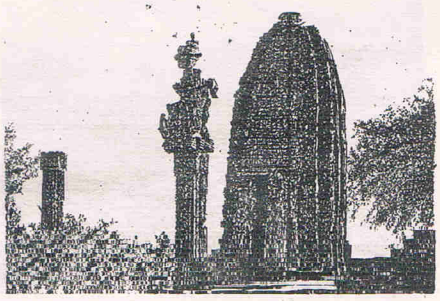

स्टेट की एक रिपोर्ट में अमर्रा तालाब की मरम्मत का उल्लेख है। पुरातत्व विभाग ने ग्यारसपुर थाने के ठीक सामने दर्शनीय स्थलों की जो सूची लम्बे–चौड़े शिलाखण्ड पर खुदवायी है, उसमें ग्यारसपुर के दर्शनीय स्थल के रूप में मानसरोवर तालाब का नाम है, लेकिन मानसरोवर और अमर्राताल की जगह अब सैकड़ों बीघे के खेत है।

घटेरा के तालाब के निर्माण और फुरतला से उसके सम्बन्ध के बारे में वहाँ के पटेल श्री तुलाराम लोधी और गुरुगादी के महंत श्री प्रभुदास जी ने जानकारी उपलब्ध कराई। इस तालाब के साइफन सिस्टम को वहाँ पदस्थ सिंचाई विभाग के उपयंत्री श्री जे.एन. पौराणिक ने समझाया। तालाबों पर भोइयों की निर्भरता और तालाबों के नष्ट हो जाने के बाद उनकी दुर्दशा के बारे में घटेरा के ही 90 वर्षीय श्री पन्नालाल भोई ने ध्यान दिलाया। उन्होंने ही सिंघाड़ी की खेती समझाई।

सिरोंज की तालाब संबंधी जानकारी वहाँ के पुरातत्व प्रेमी साहित्यकार श्री वीरनारायण शर्मा वकील और शिक्षक श्री सादिकअली खान ने उपलब्ध कराई। उन्होंने ही तालाब के किनारे बने कुओं के नये–पुराने उपयोग के बारे में बतलाया। तालाब पर 1992–93 में लाखों रुपये खर्च किये जाने के बावजूद, अब गर्मियों में बूँद–भर पानी भी नहीं बचता है।

सिरोंज के श्री अवधनारायण श्रीवास्तव ने 'सरोवर हमारी धरोहर' योजना की इन खामियों की ओर ध्यान दिलाया। सिरोंज के तालाब के बारे में लिखते समय श्री घनश्याम शरण भार्गव की पुस्तक 'सिरोंज का इतिहास' से भी सहारा मिला। चूनगरों के बारे में मो. याकूब खाँ (मुन्ने भाई) ने काफी जानकारी उपलब्ध कराई। पहले उन्होंने और फिर श्री सुकमाल जैन ने चूनगरों के मोहल्ले में ले जाकर चूनगरों से मिलवाया भी।

सिरोंज की पच–कुइयाँ वहाँ के पुराने निवासी श्री सुकमाल जैन ने ही दिखाईं और उन्होंने तथा श्री उमाकांत शर्मा ने उनके उपयोग के बारे में काफी विस्तार से बताया।

पुराने लेखकों ने सिरोंज के वस्त्र उद्योग के बारे में काफी कुछ लिखा है। फ्रांसिसी यात्री ट्रेवेनियर ने तो सिरोंज की मलमल की यह कहते हुये तारीफ की है कि वह इतनी बारीक होती थी कि पहनने वाला निरावृत दिखता था। फूलों और दूसरे देशी तरीकों से बनाये गये रंगों के इस्तेमाल से सिरोंज में निर्मित कपड़े ज़्यादा चटखदार नज़र आते थे।

उस दौर में कपड़े,–सेमल, छेबले, अड़ूसा, साल, नीलबर्री और धबई के फूलों को गोंद, फिटकरी और गेरूई से मिला कर बनाये गये रंगों से रंगे और छापे जाते थे। इस तरह से छापे गये कपड़ों के थान, नदी की रेत पर फैला

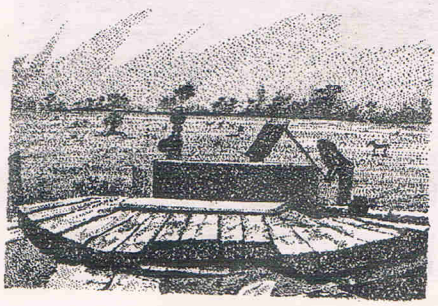

कर बार–बार सुखाये जाते थे और पूरा सूखने से पहले उन्हें फिर से भिगोया जाता था। बाद में उनका एक सिरा नदी किनारे खूँटी से बाँध कर थान को बहते हुये पानी में छोड़ दिया जाता था। इससे कपड़े का कच्चा रंग जल–प्रवाह के साथ खुद बह कर निकल जाता था और छापे तथा रंग चटखदार होकर उभर आते थे। छपाई के इस पुराने तरीके में पानी की बहुत बड़ी मात्रा में ज़रूरत होती थी। कई नदियों के पानी में मौजूद तत्वों की वजह से उनमें रंगे गये कपड़े एक अलग किस्म का असर छोड़ते थे। तब ऐसी नदियों के किनारे की बस्तियों में कपड़ों की रंगाई और छपाई का काम केन्द्रित हो गया था। सिरोंज की कैथन नदी के बारे में यही बात मानी जाती रही है और इसका जिक्र ट्रेवेनियर ने भी किया है।

निर्यात करने के लिये बड़ी मात्रा में निर्मित कपड़ों की धुलाई और उसकी रंगाई–छपाई, फिर कागज उद्योग और उस पर भी भारवाहक पशुओं के काफिलों की लगातार आवाजाही ! अनुमान लगाया जा सकता है कि छोटी सी कैथन नदी के पानी पर इस सबका क्या असर पड़ता होगा ? ऐसे में शहर के उद्योग–धन्धे भी चलते रहें और लोगों को पीने के लिये साफ़ और मीठा पानी भी मिलता रहे, इसी लिये सिरोंज की कैथन नदी के तल में जल प्रवाह से अलग–अलग ऊँचाईयों पर पाट बना कर कुये–कुईयों का निर्माण किया गया था।

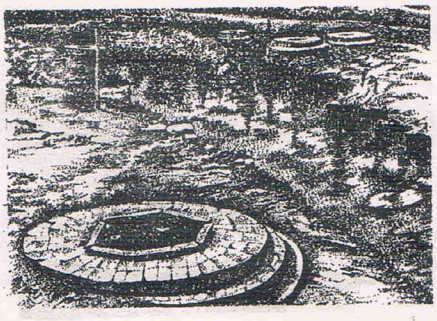

आज भी जब किसी वजह से सिरोंज की आधुनिक पेय जल व्यवस्था ठप्प पड़ जाती है तो तालाब किनारे और नदी तल के मीठे जल के स्रोतों पर भीड़ उमड़ पड़ती है। नदी तल के कुये–कुईयों पर सामग्री जुटाने में श्री उमाकान्त शर्मा, श्री लक्ष्मीकांत शर्मा, श्री सुकमाल जैन, श्री वीरारायण शर्मा, श्री रमेश यादव सहित श्री घनश्याम शरण भार्गव की पुस्तक 'सिरोंज का इतिहास' से बहुत मदद मिली। फूल पत्तों से रंग बनाने और देशी तरीके से कपड़े छापने की पुरानी तकनीक के बारे में गंजबासौदा के सौ वर्षीय रंगरेज श्री अब्दुल हमीद ने बहुत बारीकी से समझाया।

सिरोंज के श्री लक्ष्मीकान्त शर्मा ने निखट्टू नाम के उस कुएँ के बारे में दिलचस्प जानकारी दी जिसमें पानी तो बहुत है, लेकिन खारा है तो उसका नाम धरा गया निखट्टू, यानि की किसी काम का नहीं। लेकिन उन्होंने यह भी बताया कि पहले जब गर्मियों में शहर के तमाम खारे पानी के कुएँ सूख जाते थे तो फिर निस्तारी पानी की जरूरतें 'निखट्टू' ही पूरी करता था। अब सिरोंज की 'निखट्टू' नगरपालिका न उस कुएँ की देखभाल कर पा रही है और न ही मीठे पानी के दूसरे दर्जनों जल–स्रोतों की।

लटेरी के तालाबों के बारे में हमें अनेक सूचनाएँ श्री श्याम चतुर्वेदी और श्री दिनेश पाराशर से मिली। श्री चतुर्वेदी ने हमें ले जाकर लटेरी का न केवल

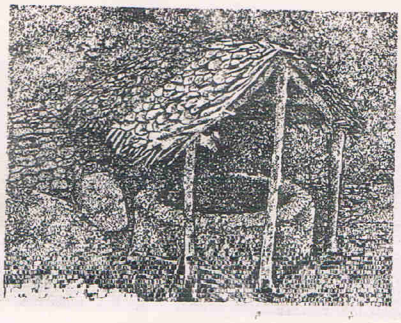

हनुमान ताल दिखाया, बल्कि तालाब के किनारे बसे मोहल्ले बरबटपुरा की दर्जन–भर वे कुइयाँ भी दिखाईं, जिनकी गहराई कुल जमा पन्द्रह फुट होती है, जिनमें दस फुट पानी भरा रहता है। यह पानी तब तक भरा रहता है जब तक हनुमान ताल नहीं रीतता, लेकिन हनुमान ताल, लटेरी इलाके में अकेला तालाब नहीं था– जल संकट से जूझती इस बस्ती और आसपास हनुमान ताल सहित सात तालाब हुआ करते थे। बाकी के तालाबों के नाम श्री दिनेश पाराशर ने धनाताल, दाऊ ताल, गुरजिया ताल, कांकरताल, मोतिया ताल गिनाये। ये सब तालाब अब खेतों में बदल दिये गये हैं, बाकी बची है, तो गोपी तलाई, सो इसलिए, क्योंकि सगड़ा–धगड़ा नाम के पहाड़ों से उतरा पानी, गोपी तलाई से ही सेन (फिर सिन्ध) नदी और सगड़ नदी बन कर बहता है।

पानी के लिए सिरोंज–लटेरी का पूरा इलाका अभिशप्त सा है। जमीन में बहुत नीचे तक पानी नहीं है, सो कुएँ–बावड़ियों की असफलता से सबक लेकर पुराने लोगों ने इलाके–भर में अनगिनत तालाब बनवाये थे। ऐसा ही एक तालाब बड़ी रुसल्ली में है। इस तालाब और वहाँ के जल–संकट के बारे में श्री रणधीरसिंह बघेल ने काफी दिलचस्प जानकारी उपलब्ध कराई।

"धरम–करम को महुआ खेड़ो, पाप की पगरानी,
बड़ी रुसल्ली कोई मत जइयो, छौंछन नईयां पानी"

जल-संसाधनों से युक्त इस देश में दिन-प्रतिदिन व्यापक और तीव्र होता जा रहा जल संकट! इससे बड़ी विडम्बना और क्या होगी ? जिस अदूरदर्शिता का परिचय हमारी राष्ट्रीय सरकारों ने अपनी योजनाओं को बनाने और उनके क्रियान्वयन में दिया, वही हमने प्रादेशिक, नागरिक, ग्रामीण और घरेलू स्तर पर दिया। लुप्त होते गये जंगल और गुम होते गये तालाब हमारी अदूरदर्शिता और लापरवाही के नतीज़े हैं। हमारी आर्थिक दुर्दशा का सूत्रपात भले ही अंग्रेजी राज ने किया हो परंतु उसको और भी व्यापक और गहन बनाने का काम हमने स्वयं ही किया है।

हमारी प्रमुख समस्या है आज़ादी के बाद बहुत तेजी से बढ़ने वाली केन्द्रीयकरण और सरकारीकरण की प्रवृत्ति जिसके कारण न केवल आय के स्रोत बल्कि सभी प्रकार के उत्तरदायित्व भी सरकार के पाले में चले गये। स्थानीय संस्थाएँ पंगु हो गईं और इस प्रवृत्ति ने स्थानीय समस्याओं को गौण बना दिया। विशाल राष्ट्रीय फलक पर बनायी जाने वाली योजनाओं में छोटे-मोटे शहरों और गाँवों की स्थानीय समस्याओं को खुर्दबीन से भी देख पाना कठिन है। किसी बड़ी परियोजना के लिये जब हजारों एकड़ भूमि डूब में आना और वन सम्पत्ति का सम्पूर्ण विनाश हो जाना या, हजारों-लाखों परिवारों को अपनी ज़मीन से उखाड़ कर सड़क पर या बियाबानों में फेंक देना, हमें विचलित नहीं करता तो किसी शहर या गांव के तलाबों, पेड़-पौधों या पशु-पक्षियों की क्या बिसात ?

पर्यावरण का एक अध्यात्म भी है। हमारी आर्ष संस्कृति में प्रकृति और पुरुष की अवधारणा थी। अतएव प्रकृति से मानव का संबंध रागात्मक था। पाश्चात्य विज्ञानजनित संस्कृति में प्रकृति को मनुष्य की दासी और भोग्या मानकर उसके शोषण का सिद्धांन्त पनपा और मानव जनसंख्या की अनाप-शनाप वृद्धि के साथ-साथ प्राकृतिक संसाधनों का ऐसा दोहन हुआ कि प्रकृति अब रक्त-रस विहीन और रुग्ण हो चुकी है। अब हम उसकी माँस-मज्जा चूसकर अपनी भूख मिटाने में लगे हुए हैं। यह क्रम कब तक चल सकता है? वैज्ञानिकों के अनुसार मात्र दो-तीन दशक और। विकास द्वारा विनाश की आधारशिला रखने वाले हमारे वैज्ञानिक, योजना शिल्पी, राजनेता और अर्थशास्त्री अब इस स्वरचित बीहड़ में हाँक लगाकर हमें शेर के आने की सूचना ही दे पा रहे हैं। शेर का सामना करने के लिए कोई अस्त्र-शस्त्र दे पाना शायद अब उनके लिए भी बहुत मुश्किल हो गया है।

प्रश्न अब केवल यह है कि हम कितनी ज़ल्दी जागते हैं। समय कम है परंतु अभी भी समय है। पर अपने संकटों का निवारण अथवा समस्याओं का समाधान हर व्यक्ति, हर मोहल्ले, हर गाँव और हर कस्बे को अपने-अपने स्तर पर भी ढूंढना सबसे ज़्यादा जरूरी है।

कहावत उन्होंने ही सुनाई थी। बड़ी रुसल्ली में लम्बा–चौड़ा तालाब होने के बावजूद, यह कहावत बनी और चली, तो इसलिए कि पहले कभी, तालाब के फूटते ही गाँव के दूसरे जलस्रोत भी सूख गये। फिर तो, हालत यह रही कि गर्मियों में नहाने–धोने की कौन कहे, नित्य क्रियाओं के लिए भी पानी के लाले पड़ जाते थे। गर्मियों में परेशान ग्रामीण सूखे तालाब में झिरियाँ खोदते। सात हाथ की गहराई पर पानी मिलता, लेकिन बस इतना कि एक ही परिवार का काम चलता।

हर परिवार की अलग झिरिया होती। पानी की चोरी भी हो जाती। ग्रामीण अपनी झिरियों के इर्द–गिर्द काँटों की बागड़ लगा देते। कई घरों के बूढ़े–पुराने तो गर्मियों में झिरियों के पास ही खटिया डाल कर सोते। यह हालत चंद सालों पहले तक रही, फिर नलकूप खुद गया। सरकार ने तालाब की भी मरम्मत करवा दी, सो कुछ राहत मिल गई है।

जिले का मशहूर पर्यटन स्थल उदयपुर, राजा भोज के वंशज उदयादित्य परमार ने बसाया था। इस विशाल नगर के साथ उन्होंने उदयेश्वर मंदिर और उदय समुद्र नाम का विशाल तालाब भी बनवाया। ये सभी निर्माण संवत् 1116 के आसपास हुए थे। इसी के कुछ समय बाद राजा नरवर्मन के शासन काल में विक्रम नामक ब्राह्मण ने पास ही अमेरा गाँव में एक विशाल तालाब बनवाया

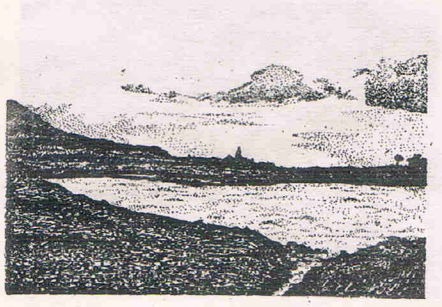

था। तालाब तो अब रहा नहीं बस बचीं है उसकी ऊँची–ऊँची पाल या बचा है संग्रहालय में सुरक्षित वहाँ मिला शिलालेख जो आज भी तालाब निर्माता की कीर्तिगाथा सुनाता है। इन सब के बारे में 'विदिशा गजेटियर' समेत अनेक पुस्तकों में सामग्री उपलब्ध है।

उदयपुर के कुओं–बावड़ियों और तालाबों के बारे में उदयपुर के मनमौजी साहेब कुंजीदास ने पता नहीं कितने कहानी–किस्से सुनाये। 'साहेब' से ही माता के उस 'जस' को सुना और श्री लक्ष्मीकान्त शर्मा से उसका मतलब समझा, जिसे पहले पता नहीं कितनी बार सुना था। पूरे बुन्देलखण्ड में नवरात्रि पर गाया जाने वाला माता का 'जस' अंचल के गाँवों में शायद ही कोई ऐसा हो, जिसने न सुना हो। साहेब कुंजीदास का तो पक्का विश्वास था कि 'जस' में उदयपुर पर हुए हमले की ही गाथा है।

'जस' में कहीं की भी कथा कही गई हो, पर उसमें तत्कालीन राजनैतिक उथल–पुथल और उसकी वजह से जलस्रोतों और बाग–बगीचों के नष्ट होने का उल्लेख इस तरह आया है :

'इकलख चढ़े तुरकिया रे, दुई लाख पठान
फौजें चढ़ी मुगल की, दिल्ली सुल्तान

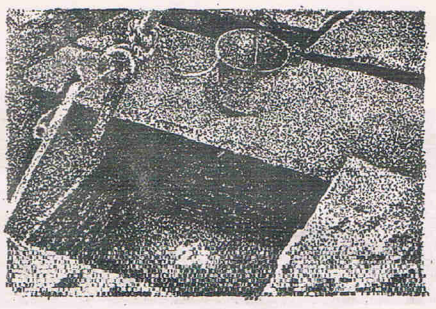

कटन लगे तेरे आम, नीम, महुआ, गुलजार
बेला, चमेली, रस केवड़ा, लौंगन के झाड़, लटकारे अनार
पुरन लगे तेरे कुआँ–बावड़ी, गौ मरे प्यास, वामन अस्नान
राजा जगत सेवा करी ओ माय.....

उदयपुर में पिछले बरसों नल–जल योजना डाल दी गई है, लेकिन देश भर की तमाम नल–जल योजनाओं की तरह वहाँ भी हाल–बेहाल हैं। उसकी हकीकत वहाँ के श्री प्रकाशपाल ने बताई। तालाब नष्ट हो जाने से वहाँ के कुएँ–बावड़ियाँ भी सूख गये हैं। फिर भी, गर्मियों में ग्रामीणों को बचे–खुचे कुएँ–बावड़ियों का ही सहारा रहता है।

गुलाबरी गाँव के पक्के, शानदार, संरक्षित कर देने लायक तालाब को देखने से भी पहले मजदूरी चुकाने की 'कुड़याब' व्यवस्था के बारे में पहली बार वहाँ के श्री बाबूलाल लोधी से सुना था। तालाब की मरम्मत 80–90 साल पहले हुई थी। तालाब देख कर लौटने के बाद 'कुड़याब' के गणित के बारे में गंजबासौदा के पुरातत्व प्रेमी श्री रतन चंद मेहता ने समझाया। दूसरी कई बहुमूल्य जानकारियों के साथ श्री मेहता के संग्रहालय में मौजूद पुरानी पुस्तकों से भी बहुत मदद मिली।

गुलाबरी से कुछ ही दूर है अनवई गाँव का तालाब, जहाँ के लोगों को

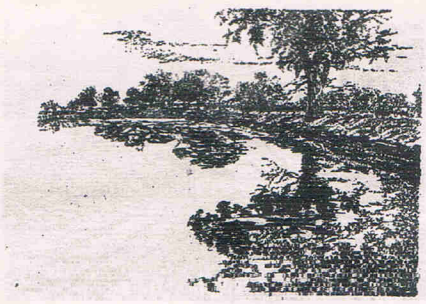

पिछले कुछ बरसों में आये ऐसे तीन मौके याद हैं, जब खलिहानों में आग लगी तो गाँव वालों ने तालाब से पानी उलीचकर खलिहान बचाये थे। यही वजह है कि अब तालाब की पाल के ठीक नीचे ही गाँव भर के खलिहान बनाये जाते हैं। तालाब दक्षिण की तरफ से तो पहले से ही पुरता चला आ रहा है। अब 1995 में उत्तर की तरफ की पाल भी फूट गयी है। आने वाले दिनों में खलिहान भले ही तालाब किनारे बनाये जाते रहें, लेकिन तालाब में पानी नहीं रहेगा।

हैदरगढ़ का जल–प्रबन्ध इस इलाके में अपनी तरह का अकेला है। इस तरह की व्यवस्था जल–संकटग्रस्त रहे राजस्थान में 'टाँका' परम्परा के रूप में जगह–जगह मिलती है। फिजूल बह जाने वाले बारिश के पानी को समेट कर पेयजल जुटाने का यह आदर्श–तंत्र वहाँ के नौजवान श्री गुलाबचंद भावसार की मदद से देख–समझ सके। वहाँ के पूर्व नवाब–परिवार के श्री बख्तियार अली ने भी इस जल–प्रबंध के बारे में कई दिलचस्प जानकारियाँ उपलब्ध कराईं। अब विदेशी मदद से हैदरगढ़ में पीने के पानी का आधुनिक इन्तजाम किया जा रहा है। श्री भावसार के मुताबिक विशेष मशीनों से किये गये चौदह इंच के नलकूप में पानी तो खूब निकला है लेकिन उसकी वजह से आसपास के करीब बीस कुएँ सूख गये हैं और कछवाड़े बरबाद हो गये हैं।

हैदरगढ़ का किला जिस पहाड़ पर बना है उसी के ठीक नीचे है तालवैड़

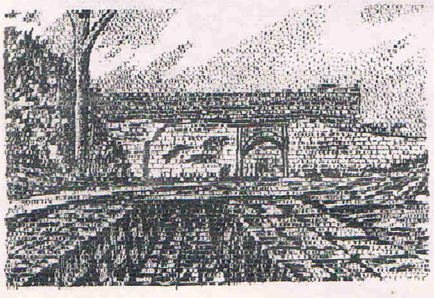

तालाब, जो इस सोच के साथ बनाया गया था कि इससे हैदरगढ़–मोहम्मदगढ़ का सीमा सम्बन्धी विवाद तो सुलझे ही, जो पक्की दीवाल बने उससे तालाब भी बन जाए। तालवैड़ तालाब को अब मृगननाथ तालाब कहा जाता है। इसका जिक्र ग्वालियर स्टेट की दुर्लभ तालाब–रिपोर्ट में भी है।

अटारी खेजड़ा गाँव में मूक पशुओं के लिए चालीस साल तक लड़कर हारने के बावजूद जीती गई लड़ाई की प्रेरक कहानी के बारे में पहली दफा वहाँ पदस्थ सरकारी डॉक्टर आनन्द गोरे ने बताया था। बाद में डॉ. गोरे ने कहानी के नायकों से भी मिलवाया। गाँव के हरिसिंह पटेल, बाबूलाल रघुवंशी और दूसरे कई बुजुर्गों ने लम्बी लड़ाई की पूरी कहानी सुनाने के साथ–साथ सरकारी ठण्डे रवैये के बारे में भी बताया। लेकिन अटारी खेजड़ा के ग्रामीण सरकार के भरोसे नहीं बैठे हैं, वे अब तालाब की उपजाऊ मिट्टी खोद–खोद कर अपने खेतों में डाल रहे हैं ताकि तालाब गहरा हो जाए।

'कहाँ गुम होते जा रहे हैं ये तालाब' अध्याय का आधार पूर्व ग्वालियर राज्य द्वारा प्रकाशित एक दुर्लभ रिपोर्ट है। तब के भेलसा जिले के तालाबों पर यह रिपोर्ट सन् 1916 में छापी गई थी। तकनीकी शब्दावली को समझना कठिन था, सो उसे इंजीनियर श्री विजय महाजन और सब इंजीनियर श्री एम.एल.कोरी ने समझाया। उनके द्वारा उपलब्ध कराये गये अपेक्षाकृत कम जटिल आंकड़ों को

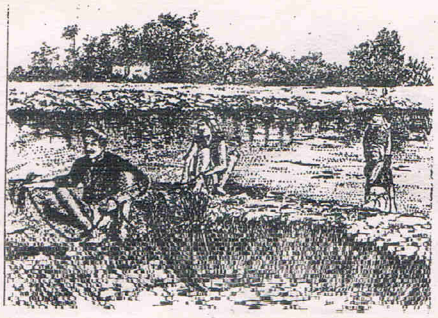

बोधगम्य बनाने में श्री दीपकराज दुबे की बड़ी मदद रही।

छप्पनियाँ काल के बारे में फुटकर चर्चाएँ जगह–जगह सुनने को मिलती हैं, लेकिन उसके बारे में विस्तार से गंजबासौदा के श्री लालताप्रसाद श्रीवास्तव और श्री रतनचन्द मेहता ने बतलाया। गंजबासौदा के ही श्री भईया लाल नामदेव ने उस दुष्काल की भयावहता पर बनी कहावत यत्नपूर्वक याद करके सुनायी कि–

छप्पनिया के काल में समय कहे कि देख,
बेर–करौंदा यों कहें मरन न दैहें एक।

ऐसे में लोगों का पलायन रोकने के लिये तत्कालीन रियासत ने तालाबों की मरम्मत और निर्माण का लम्बा सिलसिला चलाया था।

तालाबों के सिलसिले में खमतला का जिक्र जरूरी है जो श्री भरत लद्ढा और श्री जेठाभाई के सौजन्य से देखने को मिला। मोटी शिलाओं से बना खमतला का खम (खम्ब) शायद तालाब की गहराई नापने के लिये बनाया गया था। खम और तालाब किनारे पड़ी मूर्तियाँ चौथी–पाँचवी सदी की जान पड़ती हैं। साँची के स्तूप और उदयगिरि की गुफाओं से कुछ ही फासले पर बसे गाँव खमतला में तालाब की सफाई की अपनी व्यवस्था थी। तालाब पर निर्भर प्रत्येक

ग्रामीण परिवार को जरूरत पड़ने पर अपनी खेती के अनुपात में तालाब की सफाई करानी होती थी। कौन कितनी मिट्टी निकालेगा यह मन्दिर के गुरू महाराज तय करते थे आखिरी दफा इसकी सफाई गुरू महाराज ने तीस बरस पहले कराई थी और बिना हुकम–हजूरी और मदद के ग्रामीणों ने बातों ही बातों में गहरा कर डाला था। इस पुरानी परम्परा के बारे में गाँव के श्री लक्ष्मण सिंह ने बताया और वहीं के श्री गोविन्द चौबे ने समझाया।

खमतला गाँव से जब अपने दम पर तालाब साफ करने का चलन खतम हो गया तो यह शानदार तालाब भी अब सूख जाता है। गाँव का पशुधन अब दो किलोमीटर दूर बेस नदी पर पानी पीने जाता है।

गहरे हेण्ड पम्पों के पानी में फ्लोराईड और आर्सेनिक से पैदा समस्या पर चर्चा के दौरान डॉ. विजय शिरढौणकर ने सत्तर के दशक में झाबुआ में जगह–जगह लिखे गये उस सरकारी नारे, 'कुएँ–बावड़ियों का छोड़ो साथ, हैण्ड पम्पों का पकड़ो हाथ' के बारे में बताया। वे जब झाबुआ में डॉक्टर थे, तब इस नारे का वहाँ खूब प्रचार हुआ। उन्होंने याद दिलाया कि तीस वर्ष बाद झाबुआ में भी अब हैण्ड पम्पों से फ्लोराईडयुक्त पानी निकल रहा है और लोग अपाहिज हो रहे हैं।

दूरस्थ अँचल के सूखे और बदहाल तालाबों तक पहुँचने की यात्रा को

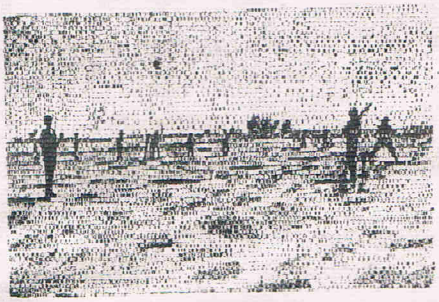

सुखद बनाने और उनके बारे में पूरक जानकारियाँ उपलब्ध कराने में गंजबासौदा के सर्वश्री सुरेन्द्र सिंह दांगी, डॉ. पुष्पेन्द्र जैन, यशपाल यादव, जगदीश गुप्ता, चन्द्र शेखर चौरसिया ने बहुत मेहनत की, जब कि इस विषय पर लिखते समय कुल्हार ग्राम के श्री वीरेन्द्र मोहन शर्मा, विदिशा के श्री धीरज शाह, श्री आर. के. श्रीवास्तव और डॉ. के. डी. मिश्रा के साथ समय-समय पर हुई चर्चा से बड़ी मदद मिली। पुस्तक को संवारने में गंजबासौदा के नवांकुर विद्यापीठ परिवार, खासकर श्री शैलेन्द्र दीक्षित, श्री शैलेन्द्र पिंगले और नम्रता यादव के साथ ही जिला पर्यावरण वाहिनी के साथियों के सुझाव बहुत उपयोगी रहे।

पुस्तक इस रूप में आ ही नहीं सकती थी यदि सम्राट अशोक अभियांत्रिकीय महाविद्यालय के संचालक और प्राचार्य श्री हरिवंश नारायण सिलाकारी ने सम्पूर्ण सामग्री को कई बार पढ़कर खुद गल्तियाँ न सुधारी होतीं। परम्परागत जल प्रबन्ध में उनकी दिलचस्पी की वजह से ही लेखों की श्रृंखला ने पुस्तक का रूप लिया है।

●

आभार :

सर्वश्री अनुपम मिश्र, वसीम अख्तर, एच. एन. सिलाकारी, पी. के. दाश,
दीपक राज दुबे, वीरेन्द्र मोहन शर्मा, धीरज शाह,
आर.के. श्रीवास्तव, विजय महाजन, एम.एल. कोरी,
जे.एन. पौराणिक, चन्द्र शेखर चौरसिया, जगदीश गुप्ता,
सुनील यादव, लक्ष्मीकान्त शर्मा,
सुरेन्द्र सिंह दांगी, यशपाल यादव, अखिलेश श्रीवास्तव, रतनचन्द्र मेहता,
डॉ. विजय शिरढोणकर, लोकेन्द्र ठक्कर,
भरत लड्ढा, हरी माहेश्वरी, डॉ. के. डी. मिश्रा,
अशोक व्यास, पंडित मदनलाल शर्मा, स्व. राजकुमार जैन एड.,
रमेश यादव, रामशंकर मिश्र, राजेन्द्र सिंह राजपूत,
वीर नारायण शर्मा, अवध नारायण श्रीवास्तव, लक्ष्मीकांत शर्मा,
उमाकांत शर्मा, रशीदा खानम, पं. रामचरण लाल शास्त्री, सादिक अली खान,
इरफान गौरी, मो. याकूब खान, दिनेश पारासर, श्याम चतुर्वेदी, रणधीर सिंह बघेल,
रघुवीर सक्सेना, श्रीनाथ अग्रवाल, चौधरी गुलाब चन्द जैन, लतीफ खान,
आसिफ मोहम्मद खान, बलराम सिंह यादव, अरुण सहेले, रफीक खान,
शान्ता प्रसाद खंगार, गुलजारी लाल जैन, प्रेम नारायण तिवारी, नासिर मोहम्मद,
महन्त प्रभुदास, तुलाराम पटेल, डॉ. पुष्पेन्द्र जैन, मिस्टर खाँ, योगेश पटेल,
प्रकाश लोधी, कन्छेदीलाल कुशवाह, कारेलाल, ओमप्रकाश सेन, साहेब कुंजीदास,
कन्छेदीलाल अहिरवार, पन्नाभोई, बाबूलाल लोधी, रामसिंह लोधी, श्रीरामसिंह,
दयासिंह, बुद्धाभोई, दलीपसिंह, बलराम सिंह लोधी, गुलाबचन्द्र भावसार,
बाबा शम्भूदयाल, बिहारीलाल चौरसिया, भागचन्द भावसार, नवाब बख्तियार अली,
रामस्वरूप दास, रज्जनलाल, ठाकुर गम्मत सिंह,
अवधनारायण नेमा, प्रमोद श्रीवास्तव, जेठा लाल, पुरूषोतम दसानिया, प्रकाश दुबे,
जयनारायण मेहता, देवेन्द्र यादव, नवलगुप्ता, रविन्द्र जैन,
डॉ. आर.के.जैन, शैलेन्द्र कुमार दीक्षित, शैलेन्द्र कुमार पिंगले, ज्ञान प्रकाश भार्गव,
सुकमाल जैन, अशोक अग्रवाल, अशोक श्रीवास्तव,
राजकुमार भावसार, मोहन भावसार, मनोज गुप्ता और नम्रता यादव,
●

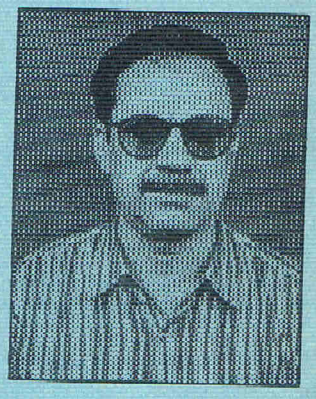

अनिल यादव

- इन्डियन एक्सप्रेस समूह के हिन्दी दैनिक जनसत्ता, नई दिल्ली से सम्बद्ध।
- विदिशा (म.प्र.) अँचल में पानी की देशज व्यवस्था को समझने की लगातार कोशिशों का नतीजा, यह पुस्तिका।
- सपना– आदि से अन्त तक प्रदूषित बेतवा की यात्रा।

□□